ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 11 मई 2014

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार 11 मई 2014 से 17 मई 2014

बै.शु. 10 ● वि० सं०–2071 ● वर्ष 79, अंक 107, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 191 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,115 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

महात्मा हंसराज को श्रद्धापूर्वक किया स्मरण

डी.ए.वी. शिक्षा आन्दोलन के प्रणेता महान् शिक्षाविद् व त्यागमूर्ति महात्मा हंसराज जी की जयंती पर डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल भूपिन्द्रा रोड़, पटियाला की इकाई 'आर्य युवा समाज' द्वारा एक समारोह आयोजित कर महात्मा जी को बड़ी श्रद्धा के साथ स्मरण किया गया। इस समारोह में स्कूल की प्रबंधिका, डॉ. पुनीत बेदी (प्रि.एम.सी.एम., डी.ए.वी. कॉलेज, चण्डीगढ़) मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहीं।

उन्होंने अपने सम्बोधन में कहा, ''महात्मा हंसराज जी की सेवाओं को डी.ए.वी. संस्था कभी नहीं भूल सकती। उनके अथक प्रयास और समर्पित जीवन के कारण ही आज डी.ए.वी. शिक्षा संस्था शिक्षा संस्था के साथ–साथ समाज सेवा में महान् संस्था के रूप में जानी जाती है।

ईमानदारी, निष्ठापूर्वक व त्याग की भावना से डी.ए.वी. की सेवा करना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि है।'' श्रीमती सरोज प्रभाकर ने विद्यार्थियों को विशिष्ठ अतिथि के रूप में अपना आशीर्वाद दिया।

समारोह का शुभारमी वैदिक मन्त्रोच्चारण के साथ हवन से किया गया; प्राचार्य एस.आर.प्रभाकर ने महात्मा हंसराज जी, के प्रति कृतज्ञता प्रगट करते हुए कहा,''समाज में फैले अज्ञान रुपी अन्धकार को ज्ञान रुपी प्रकाश से दूर करने के लिए महात्मा जी जीवन भर प्रसासरत रहे। उनके आदर्शों को जीवन में अपना कर ही हम उनके ऋण से उऋण हो सकते हैं।''

शिक्षा के साथ–साथ उत्तरदायित्व, कर्त्तव्यनिष्ठा व कुशल नेतृत्व की भावना उत्पन्न करने के उद्देश्य से इस अवसर पर हाऊस शपथ ग्रहण' समारोह भी आयोजित किया गया।

मुख्य अतिथि व प्राचार्य प्रभाकर ने सत्र 2013–14 के मेधावी छात्रों व 100% उपस्थित रहने वाले विद्यार्थियों को स्मृति चिह्न व प्रमाण–पत्र देकर सम्मानित किया। इस अवसर पर डॉ. रमेश पुरी, श्रीयशपाल शर्मा, श्री जोगिंद्र कुमार जी, स्थानीय, मॉडर्न स्कूल से श्रीमती आरुषी, बच्चों के अभिभावक व नगर के अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित रहे। डी.ए.वी. व राष्ट्रीय गान के साथ समारोह सम्पन्न हुआ।

दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय में भजन सन्ध्या

दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार के महात्मा आनन्द स्वामी सभागार में भजन सन्धया का आयोजन समारोहपूर्वक किया गया। मुख्य अतिथि के रुप में चौ. हरिसिंह सैनी एवं मुख्यवक्ता के रुप में श्री एस.के.शर्मा महामन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली ने शिरकत की। श्री शर्मा जी ने अपने आशीर्वचन में संगीत को ईश्वर भक्ति का प्रभावशाली उपाय बताया। संगीत सामवेद की विद्या मानी गयी है जो गन्धर्व विद्या के नाम से प्रसिद्ध है। संगीत का सीधा सीधा सम्बन्ध आत्मा से माना गया है। संगीत के द्वारा वेद प्रचार का कार्य सफलतापूर्वक किया जाता है।

इस अवसर पर संगीताचार्य पं. कल्याण देव रुड़की ने और श्रीमती सुदेश आर्या दिल्ली ने अपने भजनों से श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध किया। आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा ऋषि दयानन्द सरस्वती की जीवन गाथा भजनों के माध्यम से श्रोताओं तक पहुँचायी। श्रोताओं ने वेदप्रचार का प्रभावी तरीका माना और ब्राह्म महाविद्यालय की इस सुखद परम्परा का सभी आर्य भाई बहिनों ने स्वागत किया।

इस अवसर पर हिसार व हांसी के आर्यजनों डी.ए.वी. स्कूलों तथा आर्य समाजों एवं अन्य संस्थाओं ने भाग लिया। स्त्री आर्य समाज डोगरान मौहल्ला, महिला आर्य समाज मॉडल टाऊन, आर्य समाज नागोरी गेट आदि समाजों के पदाधिकारी तथा सदस्य भारी संख्या में उपस्थित थे।

स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती, महात्मा अतर सिंह स्नेही, आचार्य रामस्वरुप शास्त्री, डॉ. रविदत्त शास्त्री, आचार्य रामसुफल शास्त्री, पं. सूर्यदेव वेदांशु, डॉ. आर के तोमर, सर्व श्री सत्यपाल आर्य, नरेश कुमार लीखा, देवेन्द्र उप्पल, प्रमोद लाम्बा, सन्तोष आर्य भारीवासिया, श्री विजय अग्रवाल, प्रिं.सचदेवा, प्रि . सुनीता बहल, प्रिं. दीपक शर्मा, डॉ. आर.पी.सिंह, डॉ. विवेक श्रीवास्तव आदि महानुभाव उपस्थित थे। अन्त में प्राचार्य डॉ. प्रमोद योगार्थी ने सबका धन्यवाद ज्ञापित किया।

डी.ए.वी. सैक्टर–7 रोहिणी में महात्मा हंसराज जन्मोत्सव

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल सैक्टर–7, रोहिणी दिल्ली में महात्मा हंसराज की 150 वीं जयन्ती बड़ी धूमधाम से मनाई गई। पूरे विद्यालय में विविध कार्यक्रम आयोजित किये गए। पूरा विद्यालय परिसर हंसराज परिसर हंसराजमय प्रतीत हो रहा था। एक ओर हवन हो रहा था तो दूसरी ओर निबन्ध लेखन प्रतियोगिता हो रही थी। कहीं भजन गाए जा रहे थे तो कहीं कहीं रंग–बिरंगे परिधान धारण किए छात्र महात्मा जी के जीवन से संबन्धित नाटक प्रस्तुत कर रहे थे, वहीं कुछ छात्र चित्ररचना में संलग्न थे।

विद्यालय में आयोजित हो रहे इन विभिन्न कार्यक्रमों से महात्मा हंसराज के संदेशों को प्रत्येक छात्र के अन्तः करण में स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा था। इन सब कार्यक्रमों में हवन का कार्यक्रम अधिक आकर्षक और प्रभावशाली लग रहा था। हवन में प्रत्येक आयुवर्ग के छात्र सम्मिलित थे। महात्मा हंसराज का जन्मोत्सव भी मनाया गया। कई छात्र हवन की वेशभूषा में उपस्थित थे।

अन्त में प्रधानचार्या, इंचार्ज एवं अध्यापिकाओं ने छात्रों का पुष्पवृष्टि के साथ आशीर्वाद दिया गया। शान्तिपाठ और प्रसाद वितरण के साथ संपूर्ण कार्यक्रम का समापन हुआ।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – **श्री पूनम सूरी**

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 11 मई, 2014 से 17 मई, 2014

त्रिविध पवित्रता

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

पऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुः, त्रीष पवित्रा हृद्यन्तरा दधे।
विद्वान्त्स विश्वा भुवनाभि पश्यति, अवाजुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान्।।

ऋग् ९.७३.८

ऋषिः **पवित्रः आङ्गिरसः** । देवता **पवमानः सोमः** । छन्दः **जगती** ।

● (**ऋतस्य**) सत्य का, (**गोपाः**) रक्षक, (**सुक्रतुः**) शुभ प्रज्ञानों और शुभ कर्मों वाला (सोम प्रभु), (**दभाय न**) हिंसा या उपेक्षा किये जाने योग्य नहीं है।, (**सः**) वह, (**हृदि अन्तः**) हृदय के अंदर, (**त्री पवित्रा**) तीन पवित्रों को–विचार, वचन और कर्म की पवित्रताओं को, (**आ दधे**) स्थापित करता है।, (**विद्वान्**) विद्वान्, (**सः**) वह, (**विश्वा**) समस्त, (**भुवना**) भूतों को, (**अभि पश्यति**) देखता है, (**अजुष्टान्**) अप्रिय, (**अव्रतान्**) व्रत–हीनों को, (**कर्ते**) अंध कूप में, (**विध्यति**) धकेलता है।

● 'सोम' परमात्मा 'ऋत' का संरक्षक और अनृत का घर्षक है। जहाँ भी वह सत्य को पाता है, उसे प्रश्रय देता है। वह 'सुक्रतु' है, शुभ प्रज्ञानों, शुभ विचारों, शुभ संकल्पों और शुभ कर्मों से युक्त है और अपने सम्पर्क में आनेवाले मानवों को भी वैसा ही बनाना चाहता है। परन्तु मानव को सत्य पथ का पथिक तथा 'सुक्रतु' वह तभी बना सकता है, जब मानव उसकी शरण में जाए, उसे आत्म–समर्पण करे, उसे अपने हृदय–मन्दिर में उपास्य देव के रूप में प्रतिष्ठित करे। यदि मानव जीवन में उसकी हिंसा या उपेक्षा ही करता रहेगा, तो उससे मिलनेवाली 'सत्य' और 'शुभक्रतु' की प्रेरणा से वह वंचित ही रहेगा। अतः 'पावनकर्ता' सोमप्रभु किसी से कभी भी उपेक्षणीय नहीं है।

'सोम' प्रभु जब अपने उपासक को पवित्र करना चाहता है, तब उसके हृदय में तीन 'पवित्रों' को स्थापित कर देता है। वे तीन हैं विचार की पवित्रता, वाणी की पवित्रता और कर्म की पवित्रता। मनुष्य के विचार ही वाणी और कर्म के रूप में प्रतिफलित हुआ करते हैं, अतः वाणी और कर्मों को पवित्र बनाने के लिए सर्वप्रथम विचारों की पवित्रता आवश्यक है। यदि किसी मनुष्य के विचार अपवित्र हैं, मन में वह पाप–चिंतना करता रहता है, तो वाणी या कर्म से पाप न भी करे, तो भी वेद–शास्त्र उसे पापी कहते हैं। अतः प्रभु प्रथम अपने कृपापात्र मनुष्य से मन को पवित्र करता है, फिर उस पवित्रता को क्रमशः वाणी और कर्म में भी प्रतिमूर्त कर देता है। 'सोम प्रभु' विद्वान् है, वह प्रत्येक प्राणी की गतिविधि को सूक्ष्मता के साथ देखता है। उसकी आँख से कुछ भी नहीं छिपता। अपनी विवेक–चक्षु से साधु और असाधु की पहचान कर लेता है। साधुओं को सत्कर्म में प्रोत्साहित करता है। जो व्रतहीन हैं, किसी भी शुभ–कर्म के संकल्प से रहित हैं, अतएव जो दुर्वृत्त, अप्रिय और असेव्य हैं, उन्हें दुर्गति के अन्धकूप में धकेलता है, दण्डित करता है। आओ, हम 'पवमान सोम' को अपने जीवन की पतवार सौंपकर मन, वचन और कर्म से पवित्र बनें।

❑

वेद मंजरी स

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

गुरुदत्त विद्यार्थी एक मनमोहक व्यक्तित्व

● डॉ. राम प्रकाश

पतला बदन, दरम्याना कद, गोरा रंग, चौड़ा माथा, भाव भीनी आँखें, बहुत नर्म और भूरे रंग के सिर तथा दाढ़ी के बाल, मुख पर चन्द्र की कान्ति और सूर्य के तेज की शोभा, गम्भीर किन्तु सरल मधुर ध्वनि – मिलकर गुरुदत्त के व्यक्तित्व को मनमोहक बनाती थीं। उनके हृदय में पवित्रता, आँखों में गहनता, मुख पर बच्चों की सी सरलता, कल्पना में निर्मलता, चिन्तन में व्यापकता, संकल्प में दृढ़ता, भुजाओं में कार्यक्षमता और पाँव में गतिमयता थी। उनमें वैलन्टाइन जैसी स्मरण शक्ति, डैमोस्थनीज जैसा पुरुषार्थ तथा सुकरात सदृश मृत्यु से निर्भयता थी। क्या नहीं था ? माली ने सर्वोत्तम पुष्प चुनकर गुलदस्ता सजाया था। बर्फ शीतल है, पर वे हिमगिरि से अधिक शीतल थे। अग्नि गर्म है, पर वे ज्वालामुखी से अधिक गर्म थे। उनमें सागर की गहराई और पर्वत की ऊँचाई विद्यमान थी।

गुरुदत्त में विचित्र आकर्षण था। लोग उनकी संगति चाहते थे। मधुर स्वभाव था। कठोर शब्दों का प्रयोग नहीं करते थे। स्वभाव से नेक, मिलन सार व प्रेमी थे। शिष्यों, नौकरों एवं अधीनस्थ व्यक्तियों से उनका व्यवहार बहुत मधुर था। उनके संग घण्टों बातें करते और हंसते रहते थे। बच्चों के साथ बच्चों की तरह व्यवहार करते थे, बड़ों के साथ बड़ों की तरह। उन्हें अपने पद तथा सामाजिक प्रतिष्ठा का अभिमान नहीं था। कार्यकर्ताओं के साथ उनका व्यवहार आजकल के नेताओं जैसा नहीं था अपितु स्नेह–सना था। उनके सुख–दुःख को अपना सुख–दुःख मानते थे। एक बार मास्टर आत्माराम अमृतसरी रोगग्रस्त हो गए। इसलिए कई दिन तक पण्डित जी के दर्शनार्थ न जा सके। स्वस्थ होने पर मिलने गए। पण्डित जी भी उन दिनों बहुत रुग्ण थे, अतः दिन में सो रहे थे। मास्टर जी जाकर चारपाई पर बैठ गए। जब आँख खुली तो बहुत धीमे स्वर में मास्टर आत्माराम से पूछने लगे, "अब तुम्हारा क्या हाल है?" पण्डित जी इतने बीमार थे कि उनसे बोला भी नहीं जा रहा था, तो भी अपने दुःख की चर्चा नहीं की। हाँ, उन्हीं के विषय में पूछते रहे। पण्डित जी का व्यवहार इतना स्नेहभरा था कि मास्टर जी दिल में सोचने लगे – "इनसे अधिक प्रेम अपने जीवन में कौन सिद्ध कर सकता है?" [1]क वे विद्या के ही नहीं, प्रेम के भी अथाह सागर थे।

मुनिवर गुरुदत्त आध्यात्मिक मूल्यों की बहुत कद्र थे। चरित्र के विषय में लोक–व्यवहार के स्थान पर वेद को ही प्रमाण मानते थे। जीवन की शुद्धता पर विशेष बल देते थे। आयु भले कम थी पर जीवन महात्माओं जैसा था। अपने आध्यात्मिक संयम और नैतिक आचरण के कारण वे जय–पराजय, लाभ–हानि, सुख–दुःख आदि परिस्थितियों में समान थे। यौवन के मद मस्त हाथी को उन्होंने अंकुश द्वारा वश में कर रखा था। वे इन्द्रियों के दास नहीं, स्वामी थे। इस दिव्यात्मा ने काम, क्रोध, मोह, लोभ, अंहकार सभी जीत रखे थे। एक बार किसी महात्मा ने पूछा – आप को किस बात से बहुत दुःख होता है? बोले – जब क्रोध मेरे मन को ग्रसता है, वह समय सर्वाधिक दुःखदायी है। [2] वैदिक साहित्य के गहन अध्ययन, अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों एवं आत्मा की पवित्रता के कारण उनका चरित्र अत्यन्त निर्मल था। कुचालों तथा अनैतिक कार्यों से उन्हें बहुत घृणा थी। कुटिलता तथा जालसाजी के लिए उनकी आचार संहिता में कोई स्थान नहीं था। झूठी सन्धि उनके बस की बात नहीं थी। उन जैसी निराली स्पष्टवादिता, कुटिलता की साहसपूर्ण भर्त्सना की क्षमता, कथनी में आत्मिक शक्ति, नैतिक साहस, स्वभाव एवं विचारों की सरलता अन्यत्र कहाँ मिलेगी? वे मनसा वाचा कर्मणा पूणतया एक थे। किसी को अच्छा लगेगा या बुरा – इसकी चिन्ता किए बिना सदैव सत्यभाषण करते थे। हाँ, उनका सत्यभाषण किसी को दुःखी करने के लिए नहीं अपितु हित की मंगल भावना से होता था। विचारों में जितनी दृढ़ता थी, उनकी अभिव्यक्ति में वे उतने ही सहज थे। उनकी वाणी के प्रभाव से यह स्पष्ट था कि महापुरुष का सामान्य वाक्य भी कितना प्रभावशाली और जोरदार होता है। [3] वे झूठी महत्वाकांक्षा तथा दम्भ से रहित थे। उन्होंने कभी सम्मान नहीं चाहा। सम्मान उनका पीछा करके स्वयं सम्मानित होता था। उनमें वे आन्तरिक आकर्षण तथा दिव्य शक्तियाँ विद्यमान थीं जिनके कारण उनका जीवन

कृत्रिम महापुरुषों से स्पष्ट भिन्न दीख पड़ता है।

मुनिवर गुरुदत्त विचित्र व्यक्तित्व के स्वामी थे। वे शान्त स्वभाव, कर्मठ, मेधावी, प्रतिभाशाली, प्रगल्भ वेदवेत्ता एवं गम्भीर चिंतक थे। अदम्य उत्साह की मूर्ति थे। साहस छोड़ना तो सीखा ही नहीं था। उनमें हर सम्भव कार्य करने की क्षमता थी। रातों जागकर कार्य कर सकते थे। थकना शब्द उनके लिए निरर्थक था। ग्रहणशक्ति आश्चर्यजनक थी। अल्प समय में ही कई–कई सौ पृष्ठ पढ़ जाते और गूढ़तम रहस्य प्रथम पाठ में ही समझ लेते थे। उनकी बौद्धिक क्षमताएँ अद्भुत थीं। कई विषयों के पण्डित थे। यद्यपि संस्कृत व्याकरण तथा साहित्य पर उनका अधिकार अभी ऋषि दयानन्द सरस्वती सदृश तो नहीं था परन्तु यह बाढ़ के पानी की तरह उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। हाँ, पश्चिमी विज्ञान का ज्ञान अतिरिक्त था। छह भाषाएँ – अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अरबी और फ़ारसी जानते थे। अंग्रेजी बहुत अच्छी लिखते थे। सुन्दर एवं उपयुक्त शब्द उनके लेखों में मोतियों की भाँति जड़े हुए हैं। पर उनकी महानता अच्छी अंग्रेज़ी लिखने में नहीं, अपितु कुछ और ही बातों में निहित है।

गुरुदत्त की दिनचर्या अनियमित थी। पढ़ना–लिखना, खाना–पीना, सोना–जागना,उठना–बैठनाखेलना–कूदना – कोई कार्य भी नियमबद्ध नहीं था। जब सोने की ठान लेते तो कई–कई दिन सोते ही रहते। केवल भोजनादि के लिए जागते और फिर समाधिस्थ हो जाते। यदि पढ़ना आरम्भ कर देते तो दो–दो तीन–तीन दिन लगातार पढ़ते ही रहते। थोड़ी देर के लिए भी आँख न झपकते। भ्रमण करने निकल पड़े तो मीलों चलते जाते; फिर तो ज्येष्ठ की दुपहरी में भी घूम रहे हैं। यदि घर में बैठने की सूझ गई तो कई–कई दिन तक भीतर ही बैठे रहते, फिर केवल कॉलेज आने–जाने के अतिरिक्त और कहीं जाने का नाम ही नहीं लेते थे। उन्हें स्वयं इस स्वभाव का आभास था, इसीलिए दैनिक पंजिका में प्रायः इसकी चर्चा है। वैसे वे नियमित रूप से तो डायरी भी नहीं लिखते थे।[4] पण्डित जी ने 2 जुलाई, 1889 को डायरी में लिखा था, "क्या मेरे लिए सुधरना सम्भव है? यदि ऐसा हो सकता है तो मैं किन परिस्थितियों में 'प्रवेश निषेध' जारी कर सकता हूँ?" अतः अनियमितता का एक कारण अधिक लोगों का विचार–विमर्श के लिए आते रहना था। प्यासे का सरिता के पास जाना स्वाभाविक है। पर वह सरल स्वभाव परोपकारी जीव कीाी किसी को 'नहीं' न कह सका, यद्यपि इसके लिए भारी मूल्य चुकाना पड़ा। परन्तु प्रत्येक कार्य में अनियमित होने का यही एक कारण हो – यह भी सम्भव नहीं। फिर ऐसा क्यों था – कहा नहीं जा सकता। इस गुत्थी को कोई मनोविज्ञान का पण्डित भी शायद ही सुलझा सके। पण्डित जी का अपने ऊपर संयम तो था। फिर क्या प्रत्येक कार्य करने की क्षमता ही उन्हें अनेक कार्यों में उलझाकर अनियमित जीवन का राही तो नहीं बना देती थी ? बस, वही अन्तर्यामी जानता है।

पण्डित जी दिल के बादशाह थे। धन की कभी चिन्ता नहीं की। कभी हिसाब–किताब नहीं रखा। किसी को दे दिया फिर मांगने का प्रश्न ही नहीं। पर यदि स्वयं किसी से उधार ले लेते तो लोटाए बिना चैन न पड़ती थी। वैसे बहुत ही गूढ़ मित्रों के सिवाय किसी से उधार नहीं लेते थे। उनके लिए धन लोक–व्यवहार चलाने के लिए साधन मात्र था। इसीलिए आवश्यकता से अधिक अर्थ संग्रह को पाप मानते थे। वे कहा करते थे : "निर्वाह मात्र के लिए धर्मानुसार धन कमाना साहूकारी है, न कि पाप से अर्थसंग्रह करके विषयभोग करना।" [ख] 'मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' के उपदेश को उन्होंने जीवन में उतारा था। वे केवल वाणी से नहीं, अपितु कर्म से समाजवादी थे। उनके पास जितना धन बच पाता, उसे वे परोपकार में लगा देते थे। पुस्तकें खरीदने तथा निर्धन विद्यार्थियों की सहायता में ही उनका अधिक धन व्यय होता था। स्वामी अच्युतानन्द ने लिखा है, "पण्डित जी बड़े ही दानशील और धार्मिक कार्यों में धन व्यय करने वाले थे। राजकीय कॉलेज में दो सौ पचास रुपये मासिक वेतन पाते थे परन्तु अगले महीने की पहली तिथि से पूर्व ही यह रुपया सामाजिक कार्यों में व्यय कर देते थे।" बैंक में उनकी कुछ भी जमा राशि नहीं थी। उनकी कुल सम्पत्ति थी – मुलतान में वही एक पुराना मकान, चन्द कपड़े, कुछ पुस्तकें, असंख्य मित्र एवं प्रशंसक। वे सरिता के जल को दोनों हाथों उड़ेलते थे। उन्हें अपने लिए चाहिए ही क्या था? निजी आवश्यकताएँ बहुत कम थीं। एक नौकर के अतिरिक्त कभी दूसरा नहीं रखा। कितनी बार सारा कार्य अपने हाथ से ही निपटा लेते थे। प्रोफेसर बनकर भी उन्होंने सुख–सुविधा की सामग्री को नहीं बढ़ाया। सारा कार्य पूर्ववत् चलता रहा। लाहौर में किराये के जिस छोटे से मकान में एम.ए. में पढ़ते समय रहते थे, अन्त तक उसी में रहते रहे। हाँ, एक बार पिताजी बीमार होकर चिकित्सा के लिए लाहौर आ गए तब उस तंग मकान को दो मास के लिए अवश्य बदलना पड़ा। नहीं तो उसी में रहते पढ़े, उसी में रहते पढ़ाया, उसी में रहने ज्ञान–विज्ञान के क्षितिज को पार किया और... और.... वहीं से उस अज्ञात स्थान की यात्रा पर चले गए।

वेशभूषा बहुत सादी थी। किसी विशेष पहरावे के दास नहीं थे। न उन्हें इस विषय में किन्हीं दीवारों में घिरा रहना पसन्द था। पहरावे में किसी जातीयता का विचार नहीं करते थे। उनके विचार से प्रत्येक व्यक्ति पहरावे के लिए स्वतन्त्र है। व्यक्ति सुविधानुसार जैसा वस्त्र चाहे, पहन ले। बस, वह सादा, स्वच्छ और शालीन होना चाहिए। इसीलिए उन्हें जो मिल गया, वही पहन लिया। वैसे साधारण तथा बेढंगे वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थे। वास्तविकता यह थी कि वस्त्र उनके लिए आवश्यकता पूर्ति के साधन थे, सजावट के नहीं। दिखावा चाहे आन्तरिक हो या बाह्य, उन्हें पसन्द ही नहीं था। हीरे का मूल्य उसकी उस आन्तरिक चमक के कारण है जो प्रत्येक आवरण में से झलक पड़ती है। वे कहा करते थे, "लोग क्या कहेंगे – इसकी चिन्ता मत करो। कोई भी व्यक्ति सकल संसार को प्रसन्न नहीं कर सकता।" वे समझते थे कि जो नहीं जानते, वे जानते ही नहीं और जो जानते हैं, वे जानते ही हैं। फिर यह वस्त्रों का प्रदर्शन किसके लिए?

पण्डित जी पहले पायजामा पहनते थे। पैंट लाहौर आने के पश्चात् पहननी आरम्भ की थी। सम्भवतः इसमें उन्हें अधिक सुविधा और चुस्ती अनुभव हुई। यूँ जी में आया तो दीक्षान्त समारोह में पहनने वाला गाउन पहनकर ही घूमते रहते। वही पहनकर आर्यसमाज की अन्तरंग सभा में चले जाते। विचित्र लीला थी उनकी।

लगता है गुरुदत्त अपने शरीर को किसी विशेष तपस्या के लिए तैयार कर रहे थे। इसीलिए कभी सर्दी में ठंडे कपड़े पहन लेते और गर्मी में गर्म। कभी दिन में नंगे पाँव घूमते और कभी रात को छाता ले लेते। वैसे बूट पहनते थे। लाहौर में रहते हुए शरद् ऋतु में प्रायः कई वर्ष तक लट्ठे के कपड़े पहनते रहे। लट्ठे की पतलून, लट्ठे का कुर्त्ता, लट्ठे की वास्कट तथा कोट और साधारण सी टोपी – बस यह शरद् ऋतु का पहरावा था। जब लोग गर्मी से झुलस रहे होते थे तब कश्मीर का कोट और वास्कट पहन लेते थे तथा रात को ऊनी कम्बल ओढ़ा करते थे। चाहे कोई ऋतु हो, यात्रा में कम्बल साथ रखते थे।

सोते समय कुछ बिछा लिया तो बिछा लिया, नहीं तो यूँ ही सोए रहे। एक बार मास्टर आत्माराम अमृतसरी उन्हें प्रातः कालीन सैर के लिए लेने आए। पण्डित जी छत पर एक टूटी हुई चारपाई पर बिना दरी, बिछौने तथा सिरहाने के सो रहे थे। मास्टर जी ने उन्हें जगाया तथा पूछने लगे, "पण्डित जी नंगी खाट है और वह भी टूटी हुई, इस पर आपको कैसे नींद आ गई?" हंसकर बोले, "नंगी खाट निद्रा में बाधक कैसे हो सकती है? बेचारे गरीब इन्हीं खाटों पर सोकर अमीरों से अच्छी नींद का आनन्द लूटते हैं।" [6]

वैसे उन दिनों मुलतान का बना हुआ इकहारा कपड़ा साधारण दरी के काम में लाया जाता था। गुरुदत्त उसे बिछाते थे। ओढ़ने के लिए साधारण चादर थी। कितनी ही सर्दी हो, वे इसी में लिपट कर सो जाते थे। कई बार एक कम्बल में ही सोते रहते। लाल लाजपतराय ने वर्षों यह दृश्य स्वयं देखा था। वे लिखते हैं, "एक–दो बार जब मुझे उनके पास सोने का अवसर मिला तो मुझे कम्बल या इस प्रकार का अन्य वस्त्र न होने के कारण सारी रात जागना पड़ा, जबकि दूसरी और वे गाड़ी नींद सोते रहे तथा सर्दी लगने का काई चिह्न प्रकट नहीं किया।"[7]

आर्यसमाज जालन्धर का प्रथम वार्षिकोत्सव था। दिसम्बर का महीना। कड़कती शीत। मूसलाधार वर्षा ने शीत की तीव्रता और भी असह्य बना दी थी। सायंकाल के समय पण्डित गुरुदत्त, महात्मा मुन्शीराम व मास्टर भक्तराम भ्रमणार्थ निकल पड़े। मुन्शीराम ने कई गर्म वस्त्र पहन रखे थे। ओवर कोट भी पहना हुआ था। पर गुरुदत्त के पास एक भी गर्म वस्त्र नहीं था। वही साधारण लट्ठे का कुर्त्ता, डबल जीन की वास्कट और कोट। भक्तराम ने पण्डित जी से गर्म वस्त्र पहनने का अनुरोध किया। तब भोले बादशाह ने छाता खोलकर ले लिया और बोले, "ओस से सर्दी पड़ेगी। लो, अब इससे बचाव हो जाएगा।" मुन्शीराम ने सेवक को बुलाकर उनके लिए वर से एक धुस्सा मंगवाना चाहा। पण्डित जी के झटपट मुन्शीराम का हाथ उनकी जेब में से निकलकर अपने हाथों में ले लिया और बोले, "बताओ, धुस्सा किसे चाहिए?" सच, गुरुदत्त के हाथ अधिक गर्म थे। इसके पश्चात् महात्मा मुन्शीराम ने भी अनावश्यक वस्त्रों का बोझ ढोना बंद कर दिया।

यह ठीक है कि व्यर्थ का श्रृंगार तथा अनावश्यक वस्त्र पहने फिरते रहने का कोई लाभ नहीं। पर मुनि गुरुदत्त के व्यवहार को समझना भी कठिन है क्योंकि इसका ही परिणाम था कि वज्र समान शरीर यौवनकाल में ही झटका खा गया। सम्भवतः इसीलिए अन्तिम दो तीन वर्षों में उन्होंने इस स्वभाव का परित्याग कर दिया था। गुरुदत्त ने अपने शरीर से कठोर व्यवहार किया। उन्हें तो अपनी चिन्ता थी ही नहीं, पर आर्यजन भी उस हीरे की सम्भाल न कर पाए।

पण्डित जी की स्वाध्याय में बहुत रुचि थी। पुस्तकों पर बहुत व्यय करते थे। ऐसा लगता था कि मानो वे पुस्तकों के लिए ही कमाते हों। परन्तु स्वाध्याय के पश्चात् केवल संस्कृत, ऋषि दयानन्द तथा एन्ड्रयो जैक्सन डेविस के ग्रन्थों को ही सम्भालकर रखते थे। उन्हें 'पवित्र पुस्तकालय' कहा करते

शेष पृष्ठ 9 पर ☞

हम स्तुतिशील देवों के संपर्क में रहें

● डॉ. अशोक आर्य

हम सदा स्तुतिशील, धार्मिक व कर्मनिष्ठ देवों के संपर्क में रहें। ऐसे देव जो वेद ज्ञान को प्राप्त करते हैं। जो समाधि के अभ्यस्त हैं तथा परमपिता का अपने हृदय में दर्शन करते हैं। इस बात का उपदेश ऋग्वेद अध्याय 10 सूक्त 63 का मंत्र संख्या 3 इस प्रकार कर रहा है–

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हा।
उक्थशुष्मान्वृषभरांत्स्वन्पसस्तां आदित्यां अनु मदा स्वस्तये।। ऋग्वेद 10.63.3

इस मंत्र में चार बिंदुओं पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि–

1. देवों का अनुसरण करते हुए हर्ष हो:–

मानव को सदा अपने से बड़े का अनुकरण करने की इच्छा रहती है ताकि वह उससे कुछ गुण प्राप्त कर सके। फिर देव तो होते ही देने वाले हैं, इसलिए देवों से तो हम सदा ही कुछ न कुछ प्राप्त करते रहते हैं। इसलिए यह मंत्र भाग इस ओर ही इंगित करते हुए उपदेश कर रहा है कि :

जो सब ओर से, सब स्थानों से इस प्रकार अच्छाइयों को ग्रहण कर लेते हैं जैसे हंस पानी मिले दूध में से केवल दूध ही पीता है पानी को छोड़ देता है। इस प्रकार अच्छाइयों को ग्रहण करने वाले देवों का हम सदा अनुसरण करें, उनके अनुगामी होकर, उनके पीछे चलें। इनके पीछे चलते हुए, इनका अनुसरण करते हुए हम हर्ष का, प्रसन्नता का, खुशी का अनुभव करें। इनके पीछे चलते हुए हमें सदा प्रसन्नता हो। ऐसे देवताओं का प्रसन्नतापूर्वक अनुसरण करने से हम अपने जीवन की स्थिति को उत्तम बनाने में सफल होंगे। जो आदित्य हैं, ऐसे देव लोगों का अनुगमन करने से हम भी आदान वृत्ति वाले बनेंगे, देवत्व के गुणों का दान करेंगे। इस प्रकार हमारी स्थिति भी उत्तम होगी।

2. हमारा जीवन मधुर हो :–

हम जब देवों का, आदित्यों का अनुसरण करते हैं, ऐसे आदित्यों का जिनके लिए वेद माता मिठास से भरपूर ज्ञान का दुग्ध पिलाती है अर्थात् जो वेद ज्ञान के स्वाध्याय में लगे रहते हैं। इस मंत्र में शब्द आए हैं, स्तुता माया वेद माता इन शब्दों के माध्यम से वेद को माता कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि वेद हमारी मातृवत् पालन करता है। जिस प्रकार से माता अपने बच्चे को दुग्धपान करा कर उसका पोषण करती है, उस प्रकार ही वेद भी ज्ञान रूपी दूध का पान कराते हुए हमें ज्ञान के भंडारी बनाते हैं। इस प्रकार हम माधुर्य से युक्त हो जाते हैं, माधुर्य से परिपूर्ण हो जाते हैं। वेद माधुर्य पर अत्यधिक बल देता है क्योंकि मधुर व्यक्ति अपने सब कार्यों को सफलता पूर्वक संपन्न करने की क्षमता रखता है।

इतना ही नहीं वेद के ज्ञान को प्राप्त करने से हमारा सब प्रकार का रागद्वेष आदि दूर होता है। जब हम राग द्वेष से ऊपर उठ जाते हैं तो स्वयमेव ही मधुरता को प्राप्त करते हैं। अतः वेद का ज्ञानी कभी राग् द्वेष में रह ही नहीं सकता। इस प्रकार वह राग द्वेष आदि से ऊपर उठता है तथा उसका जीवन माधुर्य से भर जाता है, सदा प्रसन्न रहता है, खुश रहता है।

3. प्रभु हमें उत्कर्ष बनाता है'–

विगत मंत्र में दयुलोक, अंतरिक्ष लोक तथा पृथ्वी लोक वर्णन किया गया था। यह मंत्र अपने तीसरे खंड में पुनः उस चर्चा को आगे बढ़ाते हुए उपदेश करता है कि हम ऐसे देवों के संपर्क में आवें, जिनके लिए दयुलोक अर्थात् मस्तिष्क अमृत का वर्णन करता है। जब मस्तिष्कस्थ चक्र में सहस्रार चक्र में जिस समय प्राणों का सयंम होता है तो इससे योगी को अर्थात् जो इस प्रकार का योग, जोड़ कर रहे होते हैं, उन्हें वह ऐसा आनंद पाने का कारण बनते है। जिस आनंद का कभी वर्णन नहीं किया जा सकता, यह आनंद अनिर्वचनीय होता है। इस का वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता।

हृदय रूपी अंतरिक्ष हमारे अंदर उस प्रभु का वर्धन करने वाला होता है, जिसको हम आदरणीय कहते हैं। भाव यह है कि हमारे लिए प्रभु आदरणीय होता है। हम सदा उस प्रभु का आदर करते हैं। इसलिए उसे आदरणीय मानते हैं। ऐसे प्रभु की जब हमारे अंदर वृद्धि होगी तो निश्चय ही हममें भी आदर योग्य शक्तियों की वृद्धि होगी तथा हम सदा ऐसे कार्य करेंगे जिससे आद सत्कार की वृद्धि हो। ऐसे देवों के लिए हृदय में उसे पिता की भावना का उत्कर्ष होता है, उदय होता है। यह वह परम पिता परमात्मा ही है, जिसका दर्शन हमें पवित्र व शांत जीवन वाला बनाता है।

4. हम यज्यशील, परोपकारी व धर्म के कार्य करें:–

मंत्र अपने अंतिम भाग में उपदेश कर रहा है कि हम उन देवों के संपर्क में आवें, जो स्रोतों के बल वाले हों। स्रोतों से अभिप्राय वेद मंत्रों से होता है अर्थात् जो नित्य स्वाध्याय करने वाले हों, हम ऐसे देवों के संपर्क में रहें। इतना ही नहीं यह मंत्रखंड कहता है कि हम उन देवों के संपर्क में रहें, जो प्रभु की प्रार्थना करते हुए, प्रभु का स्तवन करने हुए, प्रभु का स्मरण करते हुए, उस प्रभु के सपंर्क में रहते हों। इस प्रकार प्रभु के संपर्क में आने स प्रभु के बल वाले अर्थात् प्रभुत्ता से संपन्न हों। इस प्रकार जो दवे अपने अदंर सदा धर्म की भावना को भरते रहते हैं अर्थात् सदा धर्म में विचरण करते हैं। धर्मशील होने के कारण जो सदा धर्मानुरूप उत्तम कर्म करते हैं, सदा श्रेष्ठ कर्म करते हैं इस प्रकार के देवों के संपर्क में आने से हम भी स्तुतिशील, धार्मिक तथा उत्तम यज्ञादि कर्मो के करने वाले बनें अर्थात् हम सदा परोपकारी व उत्तम कार्य करें

104–शिप्रा अपार्टमेंट कौशाम्बी,
201010 गाजियाबाद, दूरभाष–0120
2773400
09718528068

इच्छाओं पर लगाम लगाएँ

मनुष्य की इच्छाओं पर कोई लगाम न रहने से आज का जीवन जटिल से जटिलतर होता जा रहा है। इच्छाओं के असीम होने से मनुष्य किसी न किसी तरह से उनकी पूर्ति का प्रयास करता है। उसके लिये इच्छाओं की पूर्ति महत्वपूर्ण है, उनकी पूर्ति का माध्यम नहीं! नैतिक–अनैतिक, ठीक–गलत, उचित–अनुचित के बीच उसके समक्ष कोई भी विभाजक रेखा नहीं रही! यह स्थिति इसलिए और भी दुखदायी हो गई है कि इच्छाएँ पूरी तरह भौतिक ताकतों द्वारा नियन्त्रित हैं। इसलिए प्रत्येक स्तर पर मर्यादाएँ खंडित हो रही हैं। मर्यादाओं के खंडन–विखंडन और विघटन के समाचार चारों ओर से निरन्तर मिलते हैं।

सम्पत्ति के लिये पौत्र द्वारा दादी ही हत्या! यह समाचार पढ़ते ही अपने आप से वितृष्णा होने लगती है! दादी–पाते का सम्बंध दुनिया के सबसे मधुरतम सम्बंधों में से एक है। क्या आज से तीन दशक पहले ऐसी घृणित घटनाओं की कल्पना की जा सकती थी? नहीं! यह इच्छाओं पर से लगाम हटने का दुष्परिणाम है। देश के साथ गद्दारी के मामले पहले अपवाद स्वरूप होते थे। आज शिक्षित–प्रशिक्षित राजनयिक ही देश के हितों के साथ खिलवाड़ करने से पीछे नहीं हटते। हितों के साथ यह खिलवाड़ छोटी सुविधाओं और रियासतों के लिए किया जाता है। इसी बात को थोड़ा आगे बढाएँ! पहले राजनीति में लोग त्याग की भावना से आते थे, आज राजनीति में अपनी आर्थिक महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिये आते हैं। लाखों–करोड़ों रुपये के घोटाले, राजनीतिक हत्याएँ–यह सब हमारे समय के मुहावरे बन गए हैं!

पहले साधु–संन्यासी का चोला व्यक्ति अपनी इच्छाओं का त्याग कर करता था। आज लोग साधु–संन्यासी अपनी अधूरी भौतिक इच्छाओं को पूरा करने के लिये बनते हैं। लगता है कहीं बड़ी भारी भूल हो गई है क्योंकि यहाँ तो आवा का आवा ही खराब हो गया है। इसलिए ज़रूरी है कि हम अपनी इच्छाओं पर लगाम लगाएँ। इच्छाओं के अनियंत्रित होने से हमारा समूचा मानसिक–आर्थिक–भावनात्मक संतुलन गडबड़ा गया है। इसलिये समाज को सद्कर्मों के लिये प्रेरित करने वाले व्यक्ति तथा समुदायों को इच्छाओं पर लगाम लगाने का संदेश देना चाहिए। यह संदेश आचरण युक्त होगा तभी सार्थक परिणाम मिलेंगे।

आर्य समाज
मॉडल टाऊन,
लुधियाना की प्रस्तुती

उत्कृष्टाशङ्क समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका–क्या ज्यादा धन कमाना ठीक नहीं है? यदि सच्चाई के साथ यम–नियमों के पालन का पूर्ण प्रयास करते हुए कमाया जाए तो?

समाधान– अच्छे कामों के लिए धन तो आवश्यक है ही। धन कमाना चाहिए परन्तु यम–नियम का पालन करते हुए, ठीक ईमानदारी से, मेहनत से धन कमाएं, तो कमा सकते हैं, अधिक भी कमा सकते हैं।

यहाँ नियम यह है कि – **''जितना अधिक कमाएंगे, उतनी आपकी समस्या बढ़ती जाएगी। आवश्यकता से अधिक धन जमा करेंगे, तो फिर वो आपके लिए बाधक बनेगा।''**

पहले तो समय अधिक खर्च करना पड़ेगा। वह खुद भी खाएगा नहीं, जमा करता रहेगा। जमा किया हुआ धन, फिर उसके लिए कार्य में बाधक होता है। वो 'परिग्रह' का पालन करता रहता है। फिर उसकी सुरक्षा की चिन्ता हो जाएगी। और बस उसकी सुरक्षा में ही लगा रहेगा। कोई धन छीन ले जाए तो दुःखी, कोईचुरा ले जाए तो दुःखी, कोई उधार ले जाए और लौटाए नहीं तो दुःखी। इसलिए एक विद्वान ने बड़ा अच्छा श्लोक लिखा है– **''अर्थानाम् अर्जने दुःखम् अर्जितानां च रक्षणे। आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थान् कष्टसंश्रयान्।।''** अर्थात् पैसा कमाने में दुःख उठाओ, और कमाए हुए धन की रक्षा करने में दुःख उठाओ। इस तरह **इन्कम हो तो दुःख, और खर्चा हो तो और दुःख।** जो धन हमेशा कष्ट ही देता है, ऐसे धन को धिक्कार है। ऐसा धन क्या करेंगे? इसलिए हमारे अनुभव से लाभ उठाइए, अधिक मत कमाइए।

हम पूरे देश में घूमते हैं। बड़े–बड़े सेठ लोगों के यहाँ जाते हैं। **हमारा अनुभव यह है कि– 'जो जितना बड़ा सेठ है, वो उतना अधिक दुःखी है'।** जितने बड़े सेठ से मैं मिला, उसे उतना ज्यादा दुःखी पाया। ऐसा मुझे उन सेठों ने अपनी जुबानी कहा है। एक सेठ ने मुझे कहा– ''मेरा नाम तो है शाँतिलाल, लेकिन मुझे आधा घंटा भी शाँति नहीं है।'' इसलिए ज्यादा धन मत कमाइए, आवश्यकतानुसार कमाइए।

- **आपको जितनी आवश्यकता है, उतना धन कमाइए।** और फिर जितनी समय–शक्ति शेष बचती है, उसको आध्यात्मिक–क्षेत्र में लगाइए।
- धन के पीछे मत पड़िए। वो तो बुद्धि खराब ही करता है। **जब व्यक्ति के पास पैसे नहीं होते तो उसका विचार कुछ और होता है, और जब जेब में पैसे आ जाते हैं, तो उसका विचार बदल जाता है। कैसे?**

एक व्यक्ति के पास बहुत पैसे नहीं थे, तो वो सोचता था– ''हे भगवान! मेरी दस लाख रुपये की लॉटरी लग जाए तो पाँच लाख दान कर दूँगा।'' यह विचार तब तक है, जब तक दस लाख रुपये जेब में नहीं आ जाते हैं। और कल्पना कीजिए, दस लाख रुपये की लॉटरी लग गई। अब वो पाँच लाख रुपये भी दान में नहीं देना चाहेगा, अब उसका विचार बदल जाएगा। लॉटरी से कमाना तो वैसे ही गलत है, क्योंकि वो तो जुआ है।

मेहनत से ईमानदारी से भी जब व्यक्ति धन कमा लेता है, तो भी उसकी बुद्धि बदल जाती है, विचार बदल जाते हैं। **पहले सोचता था– जितना कमाऊंगा, उसमें से बीस, पच्चीस, पचास प्रतिशत दान कर दूँगा। लेकिन जब प्रैक्टिकली जेब में पैसे आ जाते हैं, तो विचार बदल जाता है। अब दान का प्रतिशत दो–तीन पर आकर फिसल जाता है।** वो भी मुश्किल से, घिस–घिस करके दान देगा। इसलिए इतना धन न कमाएं कि उपयोग ही न कर सकें।

दर्शन योग महाविद्यालय
आर्यवन, रोजड़ – 383307

हम वीर और श्रेष्ठ मनुष्यों से युक्त हैं।

● स्वामी ध्रुवदेव जी परिव्राजक

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम।।

(यजु.अ.34/मं.36)

पदार्थः–हे(भग)परमैश्वर्यवान्! ऐश्वर्य के दाता, संसार वा परमार्थ में आप ही हो, तथा हे (भगप्रणेतः) आपके ही स्वाधीन सकल ऐश्वर्य हैं, अन्य किसी के अधीन नहीं। आप जिसको चाहो उसको ऐश्वर्य देओ, सो आप कृपा से हम लोगों का दारिद्र्य छेदन करके हमको परमैश्वर्यवाले कर, क्योंकि ऐश्वर्य के प्रेरक आप ही हो। अथवा हे (प्रणेतः) सबके उत्पादक, सत्याचार में प्रेरक उत्तमता से प्राप्ति कराने वाले और पुरुषार्थ के प्रति प्रेरक! है (सत्यराधः) सत्य ऐश्वर्य की सिद्धि करने वाले तथा जो मोक्ष कहाता है उस सत्य ऐश्वर्य का दाता आप से भिन्न कोई भी नहीं! अथवा है **(सत्यराधः)** विद्यमान पदार्थों में उत्तम धाम वाले व उसके देने वाले अथवा सत्य प्रकृतिरूप धनयुक्त ! हे **(भग)** अत्यन्त सेवा करने योग्य व सत्याचरण करने वालों को सकल ऐश्वर्य देने वाले ईश्वर ! आप कृपा कर **(नः)** हम लोगों के लिए (इमाम् धियं ददत् उदव) इस प्रशंसा युक्त सर्वोत्तम बुद्धि को देते हुए हम लोगों की उत्तमता से रक्षा कीजिये अर्थात् जिस उत्तम बुद्धि से हम लोग आपके गुण और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान ज्ञान इन को यथावत प्राप्त हो अथवा हमको सत्यबुद्धि, सत्यकर्म और सत्यगुणों को **(उदव)** प्राप्त कर, जिससे हम लोग सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों को यथावत् जानें। हे (भग प्र णो जनय) सर्वैश्वर्योत्पादक ! हमारे लिये पूर्ण ऐश्वर्य को अच्छे प्रकार से उत्पन्न कर, सर्वोत्तम गाय, घोड़े और मनुष्य इनसे सहित अत्युत्तम ऐश्वर्य हम को सदा के लिए दीजिए।

हे (भग) सर्वशक्तिमान् ! आपकी कृपा से सब दिन हम लोग (नृभिः नृवन्तः प्र स्याम) नायक बहुत वीर श्रेष्ठ मनुष्यों (पुरुष, स्त्री, सन्तान, भृत्यादि) से युक्त अच्छे प्रकार हों। आपसे यह हमारी अधिक प्रार्थना है कि कोई मनुष्य दुष्ट व मूर्ख न रहे, न उत्पन्न हो, जिससे हम लोगों की सर्वत्र सत्कीर्ति हो, निन्दा कभी न हो।

(स.वि.+ आर्याभि.+वेदभाष्य)

भावार्थ (1) :–

जो मनुष्य ईश्वर की आज्ञा, प्रार्थना, ध्यान और उपासना का आचरण पहले करके पुरुषार्थ करते हैं वे धर्मात्मा होकर अच्छे सहायवान् हुए सकल ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं।

(ऋ. दया. कृत ऋग्वेद भाष्य मं. 7/सू. 41/मं.3)

भावार्थ (2) मनुष्यों को चाहिए कि जब जब ईश्वर की प्रार्थना तथा विद्वानों का संग करें तब तब बुद्धि की ही प्रार्थना वा श्रेष्ठ पुरुषों की चाहना किया करें।

(ऋ. दया. कृत ऋग्वेद भाष्य अ. 34/मं.36)

टिप्पणीः– (क) ईश्वर सत्याचार व पुरुषार्थ में प्रेरक हैं अर्थात् जीव को अन्तर्यामी रूप से विद्या–विज्ञान देकर सत्याचार व पुरुषार्थ में रुचि उत्पन्न करने वाले हैं।

(ख) प्रकृति, जो कि संसार को बनाने की साम्रगी है, ईश्वर की सम्पत्ति है। यह सम्पूर्ण सृष्टि भी ईश्वर का धन है। सत्व, रजस् व तमस् इनकी साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं।

(ग) ईश्वर अत्यन्त सेवा करने के योग्य हैं अर्थात् ईश्वर की अत्यन्त सेवा (आज्ञापालन) करनी चाहिए क्योंकि जितना हित या सुख जीवों का ईश्वर से होता है उतना अन्य किसी से नहीं।

(घ) ईश्वर सत्याचरण करने वालों को सज्जनों को ही अपना ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, दुर्जनों को दुष्टाचारण करने वालों को नहीं।

(ङ.) ईश्वर जीवों की अनेक प्रकार से रक्षा करते हैं उनमें एक प्रकार है– 'सर्वोत्तम बुद्धि सा सद्–बुद्धि को प्रदान करके'। सद्–बुद्धि मिलने पर मनुष्य अच्छे कर्मो, अच्छे स्वभावों व अच्छे गुणों को धारण करता है जिससे वह दुःखों से बच जाता है।

(च) ईश्वर मनुष्यों से यह चाहते हैं कि वे ऐश्वर्यशाली, पुरुषार्थी, सत्याचारी, विद्वान बनें व सत्कीर्ति से युक्त हों।

दर्शन योग महाविद्यालय
आर्यवन, रोजड़, पत्रा– सागपुर,
जि.– साबरकांठा
(गुजरात) 383307

विद्या का चिह्न–उपनयन संस्कार

● राज कुकरेजा

प्राचीन ऋषि–मुनियों ने मानव की शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति के लिए जन्म से ले कर मृत्यु पर्यन्त भिन्न–भिन्न समय पर संस्कारों की व्यवस्था बहुत ही सुंदर ढंग से की है। ऋषि दयानन्द सरस्वती जी ने संस्कारों को परमोपयोगी समझ कर ही प्राचीन ऋषि–मुनियों की पद्धति का अनुसरण कर के संस्कारविधि की रचना की है। ऋषि दयानन्द सरस्वती जी संस्कारविधि की भूमिका में लिखते हैं **''जिन संस्कारों के द्वारा शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यंत योग्य होते हैं, इस लिए संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अति उचित है।''**

मानव जीवन की उन्नति में संस्कारों का विशिष्ट महत्व है। संस्कार का सरल अर्थ है किसी द्रव्य को उत्तम स्थिति में लाना। द्रव्य की गुणवत्ता को बढ़ाना इस का नाम संस्कार है... जीवन के हर क्षेत्र में गुणवत्ता अपना एक विशेष स्थान रखती है। एक सुघड़ गृहिणी भोजन में ठीक–ठीक मात्रा में मसालों का प्रयोग करके भोजन को पौष्टिक एवं स्वादिष्ट बना देती है। कृषक भी जानता है कि बीजों की गुणवत्ता बढ़ाने से ही उपज की मात्रा और गुणवत्ता श्रेष्ठ होती है। माली अपने पौधों की व पशु पालक अपने पशुओं की ओर विशेष ध्यान देता है। दर्जी कपड़े को काट–छांट करके सुंदर डिजाइन बना करके कपड़े की सुन्दरता में चार चाँद लगा देता है। कुम्हार मिट्टी से जैसा भी चाहे बर्तन को आकार दे सकता है। इसी प्रकार माता–पिता एवं आचार्य भी बालक को सुसंस्कार देकर बालक की आत्मा को सुसंस्कृत और शरीर को सूभूषित कर सकते हैं।

इन संस्कारों में **उपनयन संस्कार** भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ऋषि लिखते हैं कि नौवें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने संतानों का उपनयन करके आचार्य कुल में अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान आचार्य और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्या दान करने वाली हो, वहां लड़के और लड़कियों को भेज दें। शूद्र आदि वर्ण उपनयन किये बिना, विद्याभ्यास के लिए गुरुकुल में भेज दे। यह विभाजन जन्म के आधार पर है क्योंकि गुरुकुल में प्रविष्ट बालकों के वर्ण का आधार माता–पिता के वर्ण के आधार पर होता है, अध्येताओं के वर्ण का निर्धारण तो विद्याध्ययन की समाप्ति पर होता है। **उपनयन ही विद्या का चिन्ह है।** उपनयन का अर्थ ही है निकट ले जाना। यह संस्कार बालक को आचार्य के निकट ले जाता है, इसलिए इसे उपनयन संस्कार कहते हैं। उपनयन संस्कार में मुख्य कर्म यज्ञोपवीत का धारण करना होता है। बालक को विद्या आरम्भ के समय यज्ञोपवीत विशेष **चिन्ह** ज्ञान–धारण करने को देते हैं। प्राचीन काल में यदि ठीक–ठीक विद्या सम्पादन न हुई तो चाहे ब्राह्मण के ही कुल में उत्पन्न हुआ हो भी उस को यज्ञोपवीत छीन लिया जाता था और उस की अप्रतिष्ठा होती थी। यज्ञोपवीत धारण करने में बड़ी ही जवाबदारी रहती है। यज्ञोपवीत को ही व्रतबंध भी कहते हैं। यज्ञोपवीत आचार्य तथा शिष्य को एक दूसरे के साथ व्रतों से बाँधने का प्रतीक है। गर्भ में बालक माता के साथ नाड़ी के द्वारा बंधा (जुड़ा) होता है और नाड़ी द्वारा ही माँ से श्वास, भोजन एवं संस्कार (विचार, भाव) लेता है। यज्ञोपवीत के तीन सूत्र एवं गांठ नाड़ी का ही प्रतीक हैं ऐसा हम कह सकते हैं। यज्ञोपवीत से ही बालक आचार्य से बंध जाता है। आयार्च बालक को यज्ञोपवीत धारण करवा कर, मां के समान गर्भ में धारण कर रहा होता है। इस का भाव यह होता है कि बालक अब आचार्य के पास उतना ही सुरक्षित है जितना मां के गर्भ में। इसलिए आचार्य मंत्र बोलता है कि–

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्।।

अर्थ–आचार्य इस प्रतिज्ञा मंत्र को बोलता है कि तेरे हृदय को मैं अपने अधीन करता हूँ। तेरा चित्त मेरे चित्त के अनुकूल सदा रहे और तू मेरी वाणी को एकाग्र मन हो प्रीति से सुन कर उस के अर्थ का सेवन किया कर और आज से तेरी प्रतिज्ञा के अनूकूल बृहस्पति परमात्मा तुझ को मुझ से युक्त करें। इसी प्रकार बालक भी प्रतिज्ञा करता है कि आप के हृदय को मैं अपनी उत्तम शिक्षा और विद्या की उन्नति में धारण करता हूँ।

श्रावणी पर्व का आयोजन वेद विद्या का प्रचार एवं प्रसार हो इसलिए किया जाता है। श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन यज्ञोपवीत को बदला जाता है अर्थात् पुराना यज्ञोपवीत उतार कर नया पहना जाता है और कई यजमान जिन्होंने यज्ञोपवीत धारण नहीं किये होते, वे नए यज्ञोपवीत धारण भी करते हैं इस अवसर पर प्रायः यज्ञोपवीत की व्याख्या इस के तीन धागों को और गांठ को लेकर उपदेशक एवं विद्वान तीन सूत्रों (धागों) को क्रमशः तीन ऋण (माता ऋण, पिता ऋण, गुरु ऋण) के सूचक और एक गांठ एक ईश्वर की सूचक है, ऐसी व्याख्या करते हैं। ऐसी व्याख्या किस प्रमाणिक शास्त्र में की गई है यह तो मालूम नहीं। ऋषि दयान्द सरस्वती जी भी संस्कारविधि में यज्ञोपवीत को विद्या का ही चिन्ह मानते हैं। न्याय दर्शन जो ऋषि गौतम कृत है, उस के चौथे अध्याय में तीन ऋणों की चर्चा तो की गई है कि उत्पन्न व्यक्ति तीन ऋणों से दबा रहता है। ये तीन ऋण हैं– ऋषि ऋण, देव ऋण, पितृ ऋण इन तीनों ऋणों का यथाक्रम व्यक्ति ब्रह्मचर्य पूर्वक वेदाध्ययन से, यज्ञ–अग्निहोत्र आदि के अनुष्ठान से तथा सन्तानोत्पादन से चुकाता है, इसलिए ये तीनों ऋण ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा वान प्रस्थ इन तीनों आश्रमों के सूचक हैं। इन तीनों आश्रमों में विद्या प्राप्ति का क्रम भी चलता ही रहता है। विद्या का क्षेत्र अति विस्तृत है। जीवन पर्यन्त भी इस विद्या प्राप्ति में लगे रहें तो भी व्यक्ति पूर्ण विद्या को प्राप्त नहीं कर सकता। जब इन तीनों आश्रमों को लांघ जाता है अर्थात् इन तीनों आश्रमों के कर्तव्यों से निवृत हो जाता है, तब सन्यास आश्रम में प्रविष्ट हो जाता है तब शास्त्रों के विधान अनुसार इस सूत्र को त्याग देता है। फिर इसे धारण नहीं करता है। इसका यह अर्थ नहीं लिया जा सकता कि उस की विद्या पूरी हो गई, उस ने इन तीनों आश्रमों में रहते हुए इतनी विद्या अर्जित कर ली होती है, जिससे समाज व देश की वैदिक सिद्धांतों के अनुरूप सेवा कर सकता है।

महर्षि मनु ने यज्ञोपवीत का धारण करना अनिवार्य बतलाया है। उपनयन की अंतिम अवधि इस प्रकार की है कि ब्राह्मण के सोलह, क्षत्रिय के बाईस और वैश्य के बालका चौबीसवें वर्ष से पूर्व–पूर्व यज्ञोपवीत होना चाहिए। यदि इस काल में इन का यज्ञोपवीत न हो तो, समाज द्वारा निन्दित समझे जाना चाहिए। कारण स्पष्ट है कि विद्या से व्यक्ति प्रतिष्ठित होता है। यज्ञोपवीत ही विद्या का चिन्ह है, यज्ञोपवीत संस्कार का न होना, विद्या विहीन समझा जाता है। इस निंदा से बचने के लिए कई लोग अपने बच्चों के यज्ञोपवीत संस्कार उन के विवाह से एक–दो दिन पूर्व करवा कर खाना पूर्ति कर लेते हैं। यज्ञोपवीत को वैदिक संस्कृति के चिह्न के रूप भी धारण किया जाता है। यज्ञ एक श्रेष्ठ कर्म है, इसलिए यज्ञ करने का अधिकारी भी उसे ही समझा जाता है जिसने यज्ञोपवीत धारण किया होता है। अन्यथा यज्ञ से पूर्व यज्ञोपवीत धारण करवाया जाता है। यज्ञोपवीत को परम पवित्र कहा गया है। यज्ञोपवीत को धारण करवाते हुए यही पवित्र मंत्र बुलवाया जाता है।

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्रयं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।। 1।।
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतनोपनह्यामि।। 2 ।।

पारस्कर गृह्य सूत्र में इस मंत्र का उल्लेख मिलता है और इस का अर्थ है– यह ब्रह्म सूत्र अत्यंत पवित्र है जो पूर्व काल से चला आता है। प्रजापति के साथ ही आदि काल से वर्तमान है। यह आयु को देने वाला है, जीवन में आगे ही आगे ले जाने वाला है, यह यज्ञोपवीत निर्मल है जो बल को, तेज को देने वाला है। हे बालक! तू यज्ञोपवीत है। तुझे यज्ञोपवीत से अपने समीप लाता हूँ।

ऋषि दयानन्द सरस्वती जी के नारी जाति पर किये अनेकों उपकारों में से एक विशेष उपकार है कि नारी को शिक्षा, विद्या प्राप्ति का अधिकार दिलाना। आज नारी जीवन के हर क्षेत्र में ऊँचाइयों को छू रही है, इस सब का श्रेय ऋषि दयानन्द सरस्वती जी को ही जाता है। मध्य काल अविद्या, अज्ञान का युग था यदि ऐसा कहा जाए जो कोई अतिशयोक्ति नहीं है, इस अविद्या का सब से बड़ा शिकार बनी थी नारी जाति, जिसे शिक्षा से वंचित कर दिया गया और यही कहा जाने लगा कि कन्या को पढ़ाना पाप कर्म है। जब विद्या प्राप्ति का ही अधिकार नहीं तो उपनयन संस्कार का और यज्ञोपवीत धारण करने का प्रश्न ही कहां उठता है। धन्य हैं ऋषि दयानन्द सरस्वती जी जिन्होंने शास्त्रों से प्रमाण दे कर पुष्टि की कि प्राचीन काल में नारियां भी उत्तम विद्या युक्त ऋषि कोटि की थीं। गार्गी, मैत्रेयी आदि प्रमुख नाम हैं। सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि लिखते हैं कि द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का यथायोग्य संस्कार करके आचार्य कुल में भेजें। आज के युग में नारी को शिक्षा का अधिकार तो मिल गया परन्तु यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार कुछ स्वार्थी लोग जो स्वयं को धर्म के ठेकेदार समझते हैं। और भ्रांत बुद्धि वाले पोंगा पंडित हैं, केवल पुरुष वर्ग को ही यज्ञोपवीत का अधिकारी मानते हैं। इसलिए विवाहोपरांत पुरुष छः धागों वाला यज्ञोपवीत धारण करते हैं। तीन धागे अपने यज्ञोपवीत के और तीन धागे पत्नी के। नारी जाति के यज्ञोपवीत धारण और वेदाध्ययन पर प्रतिबंध लगाना नारी के मौलिक अधिकारो

शेष पृष्ठ 9 पर ☞

यज्ञ में वेद मंत्रों से ही आहुति क्यों?

● गंगाशरण आर्य

हवन प्रक्रिया के साथ–साथ मंत्रों का उच्चारण क्यों किया जाता है इसका महर्षि दयानंद ने ''सत्यार्थ प्रकाश'' में उत्तर देते हुए लिखा है ''मंत्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जाएं और मंत्रों की आवृति होने से कण्ठस्थ रहें, वेद–पुस्तकों का पठन–पाठन और रक्षा भी होवे''। महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती ने ''ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका'' के वेद विषय में यज्ञ के समय मंत्रोच्चारण के लाभ बताते हुए लिखा है ''उनके पढ़ने से वेदों की रक्षा, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना होती है तथा होम से जो–जो फल होते हैं उनका स्मरण भी होता है। वेद मंत्रों के बारम्बार पाठ करने से वे कण्ठस्थ भी रहते हैं और ईश्वर का होना भी विदित होता है कि कोई नास्तिक न हो जाए, क्योंकि ईश प्रार्थनापूर्वक ही सब कर्म आरंभ होते हैं सो वेदमंत्रों के उच्चारण से यज्ञ में उसकी प्रार्थना सर्वत्र हो जाती है। इसलिए सब उत्तम कर्म वेदमंत्रों से ही करना उचित है।'' लेकिन देखा जाता है कि दीर्घकाल से पौराणिक पण्डे–पुजारी यज्ञादि अनुष्ठान कराते समय ऊँ नमः शिवायः स्वाहा, ऊँ गणेशाय नमः स्वाहा आदि अनेकों मनघड़ंत, अवैदिक वाक्यों को वेद मंत्रों की संज्ञा देकर यज्ञ में आहुति डलवाकर भोली–भाली जनता को उल्लू बनाते जा रहे हैं वो भी अपने अज्ञान को छिपाने के लिए केवल उदरपूर्ति हेतु। आप किसी को प्रतिभोज का निमंत्राण दें और उसका मधुर शब्दों से स्वागत करने के स्थान पर व्यंग्यपूर्ण कटु शब्दों से उसकी अवमानना करें तो उसके लिए सारे स्वादिष्ट व्यंजन व्यर्थ हो जाते हैं। इसके विपरीत यदि रूखा–सूखा भोजन भी प्रेमपूर्वक मधुर वार्तायुक्त सत्कार की भावना से अतिथि को परोसा जाए तो वह मुस्कान के साथ तो उस भोजन को स्वीकार करता ही है साथ ही उस भोजन का गुणकारी पोषण भी उसे प्राप्त होता है। यज्ञ में भी देवताओं (पृथ्वी, जल, वायु, आकाश आदि) का प्रीतिभोज के समान ही आह्वान किया जाता है।

भूमि प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण तो कतिपय भौतिक क्रियाओं तथा यज्ञ की गैसीय प्रतिक्रियाओं से दूर हो जाते हैं, किंतु ध्वनि–प्रदूषण सर्वाधिक सूक्ष्म प्रभावकारी होता है। विश्व में कहीं भी एक शब्द बोला जाता है तो वह सूक्ष्म विद्युत चुम्बकीय तरंगों में रूपान्तरित होकर सारे आकाश में फैल जाता है, तभी तो दूरदर्शन या आकाशवाणी से वही शब्द सारे विश्व में एक साथ एक ही समय में प्रसारित हो जाते हैं। पृथ्वी के शोर, चीख–पुकार, नारेबाजी, चीत्कार, ध्वनि विस्तारक यंत्रों से ध्वनि प्रदूषण आकाश में भर जाता है, इस आकाश–प्रदूषण का परिशमन किन शब्दों में संभव है? वेदमाता की वाणी से ही संभव है ऐसा क्यों? क्योंकि यज्ञ करते समय हम जो वेद मंत्रों का पाठ करते हैं उन मंत्रों की ध्वनि तरंगें हमारे शरीर, मस्तिष्क, मन और आत्मा पर विशेष प्रभाव डालती हैं साथ–साथ वातावरण में जाकर समस्त वातावरण की दूषित ध्वनियों को समाप्त करती हैं तथा मधुरता व सरसता का प्रसार करती हैं।। क्योंकि मंत्र एक प्रतिरोधात्मक शक्ति होती है, एक मंत्र जाप एक प्रकार की चिकित्सा पद्धति है। वर्तमान में शब्द ध्वनि का उपयोग आधुनिक चिकित्सा में नवीनतम पद्धति के रूप में किया जाने लगा है, जिसे अल्ट्रासोनिक वेव्स ट्रीटमेंट या शब्द ध्वनि तरंग उपचार कहते हैं। अल्ट्रासाउंड आदि यंत्रों द्वारा न केवल शरीर के आंतरिक अंगों की दशा का ज्ञान लिया जाता है अपितु प्रभावित अंगों पर मंत्र द्वारा शब्द तरंगों (स्वर लहरियों) या Sound waves के स्पर्श से उसकी पीड़ा आदि को दूर कर दिया जाता है।

पराबैंगनी (Ultrasonic) या Supersonic Wave treatment में यंत्र के माध्यम से Sound waves को केंद्रित किया जाता है। इन शब्द लहरियों में इतना बल होता है कि शब्द लहरियों को केंद्रित करने वाले इन यंत्रों से जब पीड़ा वाले स्थानों को कई दिन तक 5–7 मिनट के लिए छुआ जाता है तब ये दर्द चले जाते हैं। किसी भी बड़े चिकित्सालय में जाकर इस बात का पता तथा अनुभव प्राप्त किया जा सकता है। वेद मंत्रों का उच्चारण क्या है? यह स्वर लहरियों Sound waves का ही तो वायु मंडल में प्रसारण है। अगर यंत्र के द्वारा पराबैंगनी (Ultrasonic waves) से रोग दूर किया जा सकता है, तो वेद मंत्रों के एक खास प्रकार के उच्चारण से ऐसी लहरें उत्पन्न कर देना जिनसे रोग का निवारण हो, कोई आश्चर्य की बात नहीं। कोई समय रहा होगा जब वेदपाठी इस विधि को जानते थे, परंतु वेद मंत्रों द्वारा वायुमंडल को तथा माानव को प्रभावित कर देना आजकल के पराबैंगनी (Ultrasonic waves) द्वारा उपचार के ही समान हैं। मंत्र साधना के सहारे प्रतिकूल प्रकम्पनों से बचा जा सकता है। जिस तरह रसायन शास्त्री यह जानता है किन–किन रसायनों के मेल से क्या नवीन व विशिष्ट रसायन बनता है वैसे ही ध्वनि वैज्ञानिक को यह भास होता है कि किन–किन शब्दों के संयोजन से किस–किस तरह की तरंगें पैदा होती हैं। वे पर्यावरण में व्याप्त परमाणुओं को कैसे प्रकम्पित करती हैं और उसकी परिणति किसी प्रकार होगी। आज से लाखों वर्ष पूर्व वैदिक ऋषियों ने भी इसी विज्ञान के आधार पर मंत्रों की संयोजना की थी जिसे आधुनिक काल का वैज्ञानिक प्रमाणिक मानता है। मंत्र ध्वनि के विशिष्ट समूह होते हैं। लगातार वही मंत्र उचारण करते रहने से वातावरण में उन ध्वनि तंरगों का विशेष प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। यही मंत्रों का परिणाम है।

जब शब्दों का उच्चारण होता है तब उनसे आकाश में कंपन उत्पन्न होता है। कंपन समस्त लोक परिक्रमा कर लेती है और अनुकूल तरंगों को न पाकर उसे मिल जाती है उसके संयुक्त प्रभाव से साधक की इच्छा को मूर्तरूप मिल जाता है। यज्ञ में वेद मंत्रों के उच्चारण का प्रयोजन भी तो उनके विशिष्ट छन्द स्वर के नियत उच्चारण से ऐसी शब्द लहरें उत्पन्न कर देना है जिनसे न केवल आधि–व्याधियों का निवारण ही हो, प्रत्युत सम्पूर्ण आकाश ऐसे विषाणुओं से मुक्त होकर स्वच्छ व हितकारी बना रहे। यज्ञ कुण्ड में डाली गई श्रद्धापूर्वक सामग्री जब अग्नि में जाकर सूक्ष्म रूप धारण करती है तब वह वैदिक मंत्रों की ध्वनि से मिलकर वातावरण में व्याप्त हो जाती है। इसकी सूक्ष्म विद्युतीय तरंगें एक ओर वातावरण का परिशोधन करती हैं वहीं दूसरी ओर मानवीय मन में संव्याप्त ईर्ष्या, द्वेष, कुटिलता, पाप अनीति, अत्याचार, वासना, तृष्णा आदि मानसिक विकारों क्लेशों को दूर करती हैं। आत्मा को शुद्ध कर बलवान बनाती हैं। परमात्मा के सामीप्य का आनंद प्राप्त कराती हैं।

जब शब्दों का उच्चारण होता है तब उनसे आकाश में कंपन उत्पन्न होता है। कंपन समस्त लोक परिक्रमा कर लेती है और अनुकूल तरंगों को न पाकर उसे मिल जाती है उसके संयुक्त प्रभाव से साधक की इच्छा को मूर्तरूप मिल जाता है। यज्ञ में वेद मंत्रों के उच्चारण का प्रयोजन भी तो उनके विशिष्ट छन्द स्वर के नियत उच्चारण से ऐसी शब्द लहरें उत्पन्न कर देना है जिनसे न केवल आधि–व्याधियों का निवारण ही हो, प्रत्युत सम्पूर्ण आकाश ऐसे विषाणुओं से मुक्त होकर स्वच्छ व हितकारी बना रहे। यज्ञ कुण्ड में डाली गई श्रद्धापूर्वक सामग्री जब अग्नि में जाकर सूक्ष्म रूप धारण करती है तब वह वैदिक मंत्रों की ध्वनि से मिलकर वातावरण में व्याप्त हो जाती है। इसकी सूक्ष्म विद्युतीय तरंगें एक ओर वातावरण का परिशोधन करती हैं वहीं दूसरी ओर मानवीय मन में संव्याप्त ईर्ष्या, द्वेष, कुटिलता, पाप अनीति, अत्याचार, वासना, तृष्णा आदि मानसिक विकारों क्लेशों को दूर करती हैं। आत्मा को शुद्ध कर बलवान बनाती हैं। परमात्मा के सामीप्य का आनंद प्राप्त कराती हैं।

मंत्रों का वैज्ञानिक आधार प्रसिद्ध डॉ. आर.बी. धवन के अनुसार यह सच है कि मंत्रोच्चारण से हमारे मन और दिमाग को अपार शक्ति मिलती है, भौतिकी के सिद्धांतों के आधार पर इसे दो रूपों में अध्ययन किया जा सकता है शब्दों की ध्वनि व आंतरिक विद्युत धारा। अध्यात्म और ज्योतिष विज्ञान के विद्वानों के अनुसार आधुनिक विज्ञान की परिभाषिक शब्दावली में इसे अल्फा तरंग कहा जा सकता है। कहते हैं कि मंत्रोच्चारण से आंतरिक विद्युतधारा प्रवाहित होती है। दरअसल, शब्दों की ध्वनि आंतरिक विद्युतधारा प्रवाहित करती है। जब किसी मंत्र का उच्चारण किया जाता है तो ध्वनि उत्पन्न होती है, जिससे कम्पन होता है। यह ध्वनि कम्पन के कारण तरंगों में परिवर्तित होकर वातावरण में व्याप्त हो जाती है। इसके साथ की आंतरिक विद्युत भी (तरंगों में) इस में व्याप्त अथवा निहित रहती है यह शब्द की लहरों को व्यक्ति विशेष और दिशा विशेष की ओर भेजती है। यह इच्छित कार्य को पूर्ण करने में सहायता करती है। अब प्रश्न उठता है कि यह आंतरिक विद्युत किस प्रकार जनरेट होती है? कई अनुसंधानों से यह बात सामने आई है कि ध्यान, मनन, चिन्तन आदि की अवस्था में रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप शरीर में विद्युत जैसी एक धारा प्रवाहित होती है (इस हम शारीरिक विद्युत कह सकते हैं) और मस्तिष्क से विशेष प्रकार का विकिरण उत्पन्नन होता है जिसका नाम अल्फा तरंग (इसे हम मानसिक विद्युत कह सकते हैं) रखा गया है। यही अल्फा तरंग मंत्रों के उच्चारण करने पर निकलने वाली ध्वनि के साथ

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

उपनिषद्–प्रश्नोत्तरी

● धर्मपाल कपूर

प्रश्न 1. उपनिषद् शब्द का क्या अर्थ है और महर्षि दयानंद ने किन–किन उपनिषदों को आर्ष उपनिषद् माना है?

उत्तरः– उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति उप+नि+षद् शब्दों से हुई है। जिसका क्रमशः अर्थ है समीप+निष्ठापूर्वक श्रवण+परमात्मा की प्राप्ति। अतः उपनिषद् का शाब्दिक अर्थ है परमात्मा की प्राप्ति के लिए निष्ठापूर्वक श्रवण करना और ज्ञानार्जन करना। महर्षि दयानंद ने निम्नलिखित 10 उपनिषदों को ही आर्ष उपनिषद् माना हैः–

1ईशावास्योनिषद्, 2 केनोपनिषद्, 3 कठोनिषद्, 4 एतरेयोनिषद्, 5 तैत्तिरीयोनिषद्, 6 मुण्डकोनिषद्, 7 माडूक्योनिषद्, 8 प्रश्नोनिषद्, 9 छंदोग्योनिषद्, 10 बृहदारण्कोनिषद्,

प्रश्न 2. उपनिषदों में सर्वश्रेष्ठ उपनिषद् कौन सी है और क्यों?

उत्तरः– सारे उपनिषदों में ईशावास्योपनिषद् को सर्वश्रेष्ठ उपनिषद् माना गया है क्योंकि इसमें परमात्मा व जगत् के स्वरूप, मानव के कर्त्तव्यों, संसार में जीने की कला, विद्या व अविद्या, भौतिक एवं आध्यात्मिक सुख कैसे उपलब्ध किया जा सकता है आदि का उल्लेख किया गया है। वस्तुतः इसमें अध्यात्म का निरूपण बड़े मार्मिक एवं रोचक ढंग से किया गया है। यहां तक कि विद्वानों का विचार है कि यदि कभी हमारा समग्र आध्यात्मिक साहित्य नष्ट भी हो जाये, परन्तु इस उपनिषद् के प्रथम 2 मंत्र भी हमारे पास सुरक्षित रह जायें तो भी हम समूचे अध्यात्म का भवन पुनः खड़ा कर सकते हैं। वस्तुतः सारी उपनिषदें इस उपनिषद् के प्रथम मंत्र की व्याख्या है।

प्रश्न 3. उद्दालक ऋषि के पुत्र नचिकेता ने यमरास से कौन–कौन से तीन वर मांगे थे?

उत्तरः– नचिकेता ने यमराज से निम्नलिखित 3 वर मांगे थे– (1) जब वह वापिस अपने पिता के पास मुत्युलोक में जायें तो पिता उसे पहचान ले और उसका क्रोध उस पर बिल्कुल भी न रहे। (2) दूसरे वर में उसने यज्ञ में अग्नि चयन की विधि पूछ ली जहां पर हवन होगा वहां पर सुख शांति एवं आनंद होगा।

(3) तीसरे वर में उसने गूढ़तम आत्मविद्या प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की।

प्रश्न 4. प्रश्नोपनिषद् को प्रश्नोपनिषद् क्यों कहा जाता है? इसके जिज्ञासु ऋषि कौन–कौन थे और ये किस उद्देश्य के लिए पिप्लाद ऋषि के पास गये थे? पिप्लाद शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तरः– इस उपनिषद् को प्रश्नोपनिषद् इसलिए कहा जाता है कि इसमें छः ऋषियों ने पिप्लाद ऋषि से छः प्रश्न पूछे थे। उन छः ऋषियों के नाम निम्नलिखित हैं–

1. सुरेशा, 2. कबधी, 3. कौशल्य, 4. गार्ग्य मुनि, 5. वैदभि, 6. सत्यकाम।

पिप्लाद शब्द का अर्थ है जो पिप्पल की कलियां खा कर ही गुजारा करता हो।

प्रश्न 5. पाँच प्राण शरीर में कहाँ कहाँ रहते हैं और सोलह कलाएँ कौन–कौन सी हैं?

उत्तरः– शरीर में पाँच प्राण निम्नलिखित स्थानों पर रहते हैंः– 1. हृदय में प्राण, 2. गुदान में अपान, 3. नाभि में समान, 4. नाड़ियों में व्यान, 5. सुषुम्ना नाड़ी में उदान रहते हैं।

सोलह कलाएं निम्नलिखित हैं–

1. प्राण, 2. श्रद्धा, 3. पृथिवी, 4. जल, 5. वायु, 6. आकाश, 7. ज्योति, 8. इन्द्रिय 9. मन , 10. अन्न, 11. मंत्र, 12. तप, 13. वीर्य, 14. लोक, 15. कर्म, 16. नाम।

प्रश्न 6. अपरा विद्या (Scientific knowledge), पराविद्या (Spiritual knowledge), निषेधात्मक आनंद (Negative Bliss) और निश्चयात्मक आनंद (Positive Bliss) में क्या अन्तर है?

उत्तरः– अपरा विद्या में वेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद एवं ज्योतिष का ज्ञान आता है और परा विद्या में अक्षर ब्रह्म का ज्ञान या अध्यात्म विद्या आती है। जो व्यक्ति को सुषुप्ति में शरीर और आत्मा के संबंध के टूटने से आनंद की अनुभूति होती है वह तो निषेधात्मक आनंद (Negative Bliss) है। परन्तु जब आत्मा शरीर में रहता हुआ शरीर से अलग होकर परमात्मा के साथ संबंध स्थापित करता है तो उसे निश्चयात्मक आनंद (Positive Bliss) की अनुभूति होती है। यही ब्रह्मानंद है।

प्रश्न 7. वरुण ने अपने पुत्र भृगु को आनंद के विषय में क्या उपदेश दिया था?

उत्तरः– आनंद, अन्न, प्राण, मन, विज्ञान (आत्मा) में नहीं है। अपितु आनंद और परमात्मा अथवा ब्रह्म पर्यायवाची शब्द है। अतः आनंद ही ब्रह्म है।

प्रश्न 8. तत्वमसि का अर्थ क्या है?

उत्तरः– तत्वमसि का अर्थ है तू वह है। तेरा आत्मतत्व ही सत् है न कि तेरा शरीर। यह उपदेश अरुण ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को दिया था।

प्रश्न 9. महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रेयी को क्या आत्मोपदेश दिया था?

उत्तरः– महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रैयी को आत्मोपदेश देते हुए कहा था अपनी आत्मा की कामना के लिए ही धन, पति, पत्नी, पुत्र, भाई, बहन आदि प्रिय होते हैं। वह आत्मा ही तो दृष्टव्य, श्रोतव्य, मन्तव्य और निदिध्यासितव्य है। उसी को देख सुन जान और उसका ध्यान कर। ऐसा करने से ही सब गाँठे खुल जाती हैं। अतः आत्मा को जानो.... आत्मा को जानो। वस्तुतः प्यार तभी तक रहता है जब तक एक दूसरे को प्यार करते होते तो आज तक कभी भी कोई पिता अपने पुत्र को घर से निकालकर अपनी सम्पत्ति से वंचित न करता अथवा पुत्र अपने पिता को घर से न निकालता। इसी प्रकार किसी भी पति पत्नी में तलाक को लेकर अलग होने की भावना उत्पन्न न होती। अतः हम किसी को भी तभी तक प्रेम करते हैं, जब तक हमारी आत्मा को वह संतुष्ट करता रहता है। ज्यों ही हमारी आत्मा को दुःखी करता है तो हम उससे छटकारा पाने के लिए तैयार हो जाते हैं। वस्तुतः जब हम एक दूसरे से प्रेम कर रहे होते हैं तो हम अपनी आत्मा से प्रेम कर रहे होते हैं।

प्रश्न 10. महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रेयी को ब्रह्मविद्या या मधुविद्या का क्या उपदेश दिया था?

उत्तरः– महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी मैत्रेयी को ब्रह्मविद्या का उपदेश देते हुए कहा था कि पति के प्रयोजन के लिए पति प्रिय नहीं होता अपितु अपनी आत्मा के प्रयोजन के लिए ही वह प्रिय होता है। स्त्री के प्रयोजन के लिये स्त्री प्रिय होती है। अतः प्रत्येक वस्तु अपने ही प्रयोजन के लए प्रिय लगती है। अतः संसार का कोई भी व्यक्ति किसी भी व्यक्ति के लिए कुछ भी नहीं कर सकता जब तक उसे ब्रह्मानन्द की प्राप्ति न हो जाये। संसार के सब व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए ही कार्य करते हैं। परन्तु परमात्मा एवं महापुरुष केवल दूसरों के कल्याण के लिए ही कार्य करते हैं। क्योंकि परमात्मा ही आनंद है और महापुरुष को आनंदानुभूति हो चुकी है।

उपनिषदों की महत्ताः–

उपनिषदें ऋषियों का उदात्त उत्तम एवं उज्जवल चिन्तन है। उनके अनुशीलन ने मेरे जीवन को सुखमय, शांतिमय एवं आनंदमय बनाकर मेरी कायाकल्प कर दी है। इसलिए मैं तो यहां तक कहता हूं कि जिस व्यक्ति ने इसका अध्ययन मनन एवं आत्मसात् नहीं किया उसने अपना जीवन व्यर्थ ही गंवा दिया। इसकी महत्ता पर प्रकाश डालते हुए जर्मनी के महान् दार्शनिक शौपाहार ने लिखा है।

In the world there is no study so beneficial and so evaluating as that of the Upnishads. They are the porduct of the highest wisdom. It has been the solace of my life. It will remain the solace of my death. It is destined sooner or latter to become the faith of people.

संसार में ऐसा कोई अध्ययन नहीं है जो उपनिषदों के समान उपयोगी तथा ऊँचा उठाने वाला हो, ये उच्चतम बुद्धि की उपज हैं। उसी से मुझे जीवन में शांति मिलेगी। एक न एक दिन उपनिषदों की शिक्षा ही मानव मात्र की शिक्षा का केन्द्र बनेगी।

निष्कर्षतः एक वाक्य में इतना ही कहना काफी होगा कि वेद मंत्रों में जो पहेली बन गई वह उपनिषदों में सहेली बन गई। अतः उपनिषद् वैदिक साहित्य की अमूल्य निधि है और ये वेदों का सारामृत है।

विभिन्न आर्ष उपनिषदों के 10 अत्यन्त महत्वपूर्ण उद्धरण

ईशावास्योपनिषद्

1. **अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठांते नम उक्तिं विधेम।।** 18।।

हे प्रभु ! तुम सब प्रकार के कर्मो को जानते हो। अतः तुम हमें उन्नति के लिए ऐसे मार्ग से ले चलो जो सुपथ हो। जो कुटिल पाप मार्ग है उसे हमसे अंतरात्मा का युद्ध कराकर पृथक् करो। हम बार–बार तुम्हें नमस्कार करते हैं।

कठोपनिषद्

2. अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषँ सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते।। –दूसरी वल्ली–1

श्रेयमार्ग (आध्यात्मिक मार्ग) अन्य है, प्रेयमार्ग (भौतिक मार्ग) अन्य है। ये दोनों विभिन्न उद्देश्यों से आदमी को बांधते हैं। इनमें श्रेय को अपनाने वाले व्यक्ति का भला होता है और प्रेय को अपनाने वाला व्यक्ति अपने उद्देश्य से हट जाता है।

3. आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।। –तीसरी वल्ली–3

आत्मा रथी है, शरीर रूपी रथ का स्वामी है। शरीर एक रथ है, बुद्धि सारथि है और मन लगाम है।

मुण्डकोपनिषद्

4. तत्रापरा, ऋग्वेदो यजुवेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्यौतिषमिति। अथ परा, यया तदक्षरमधिगम्यते।। –प्रथम मुण्डक–5

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिषि का ज्ञान अपरा (Scientific knowledge) विद्या है। परन्तु इसके विपरीत जिस विद्या से अक्षर ब्रह्म का ज्ञान हो वह परा (Spiritual knowledge) विद्या है।

5. द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।। –तीसरा मुण्डक–1

दो पक्षी सुन्दर पंखों वाले हैं जोकि साथ–साथ एक वृक्ष की शाखा पर जुड़े बैठे हुए हैं और एक दूसरे के सखा भी हैं। वे एक ही वृक्ष को सब ओर से घेरे हुए हैं। उनमें से एक तो वृक्ष के फलों का स्वाद ले रहा है। दूसरा बिना चखे सब कुछ देख रहा है। वस्तुतः आत्मा एवं परमात्मा ही दो पक्षी हैं। प्रकृति की वृक्ष है, परमात्मा प्रकृति में असक्त हुए बिना समूचे विश्व का दृष्टा है।

तैत्तिरीयोपनिषद्

6. आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात्। अनंदाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशांतीति।

शेष पृष्ठ 9 पर ☞

☞ *पृष्ठ 3 का शेष*

गुरुदत्त विद्यार्थी एक...

थे। उनके अतिरिक्त मूल्यवान से मूल्यवान पुस्तक को भी पढ़कर फेंक देते थे। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश को अठारह बार पढ़ा था। [8] वे कहा करते थे कि सत्यार्थप्रकाश की प्रत्येक पुनरावृत्ति पर मुझे सदैव नई बातों का बोध होता है। एक बार उन्होंने यहाँ तक कहा, "सत्यार्थप्रकाश की एक प्रति चन्द आने में मिल जाती है पर यदि इसका मूल्य अधिक होता तो मैं अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर भी इसे खरीदता। मुझे यह ग्रन्थ इतना प्रिय है कि इसे खरीदने के लिए गले में झोली डालकर चन्दा मांगने के लिए भी तैयार हूँ।" पण्डित जी डेविस महोदय के ग्रन्थ भी चाव से पढ़ते थे। हिन्दी–संस्कृत न जानने वालों को डेविस की पुस्तकें पढ़ने के लिए कहा करते थे। उनके चित्र के साथ गुरुदत्त की आकृति कुछ मिलती थी। बाल सुलभ स्वभाव गुरुदत्त इस बात से बड़े प्रसन्न होते। डेविस के लिए उनके हृदय में काफी मान था। वे उसे अपना चाचा कहा करते थे। पर ऋषि के दर्शन कर लेने के पश्चात् उनके प्रति श्रद्धा सब सीमाएँ पास कर चुकी थी। गुरुदत्त ऋषिवर को अपना पिता मानते थे। इसमें अतिशयोक्ति भी क्या? यदि लाला रामकृष्ण ने उसे भौतिक जन्म दिया, तो आध्यात्मिक जन्म दिया ऋषिवर ने। जगद्गुरु ने गुरुदत्त को आर्यसमाज को देकर उनका 'गुरुदत्त' नाम सार्थक बना दिया।

पण्डित जी पुराणों और अश्लील तथा कामवासना भड़काने वाले उपन्यासों के पढ़ने का निषेध किया करते थे। स्वामी आत्मानन्द को पुराण पढ़ते देखकर उन्होंने कहा था: "आप संन्यासी हैं। वेद का नियमित स्वाध्याय किया करें। पुराणों पर समय और शक्ति नष्ट न करें। इसका परिणाम अच्छा नहीं निकलेगा। आस्तिकों को वेद का ही स्वाध्याय करना चाहिये।" ऐसा ही हुआ। बाद में स्वामी जी नास्तिक हो गए। [9]

पण्डित जी का भोजन सादा तथा विशुद्ध शाकाहारी होता था। मांसभक्षण के प्रबल विरोधी थे। लाल मिर्च का सेवन भी नहीं करते थे। हाँ, शाक उन्हें बहुत प्रिय था। उनके भोजन में जो दाल–सब्जियाँ व अन्य पदार्थ परोसे जाते थे, उन्हें एक–एक करके क्रमशः खाते थे। पानी भोजन के बीच में नहीं पीते थे। मन आया तो एक दो–चपाती खाकर बस कर दी; पर खाने लगे तो दो–तीन पाव आटे पर हाथ साफ कर दिया। शराब, तम्बाकू आदि नशीले पदार्थों से उन्हें इतनी घृणा थी कि कोई नशा कभी न खाया, न पिया। भोजन की विशेष चिन्ता न करते थे। जिन दिनों कॉलेज में पढ़ाते थे और पिता जी की बीमारी के कारण सेवक उनके पास भेज दिया था तब दो महीने केवल दूध और बिस्कुट पर काट दिए। अपने वस्त्र स्वयं धोते रहे। हालत फकीरों की सी थी।

पण्डित जी अद्‌भुत वक्ता थे। उनके मतानुसार सत्य भाषण का ही दूसरा नाम अद्‌भुत वक्तृता है। उनकी वाणी में अकथनीय प्रवाह था, ऐसा प्रवाह जो भाव विभोर श्रोताओं को अपने साथ बहा ले जाता था। बड़े–बड़े मौलवी एवं पादरी उनका भाषण सुनकर स्तब्ध रह जाते थे। आर्य जनता वर्ष भर उस घड़ी की प्रतीक्षा करती थी जब उन्हें पुनः उनका भाषण सुनने का सौभाग्य मिलेगा। अनेक जन उत्सव में केवल उनका भाषण ही सुनने आते थे। व्याख्यान के बाद धन एवं आभूषणों की वर्षा होती थी।

व्यायाम में उन्हें बाल्यकाल से ही रुचि रही। वे जिम्नैस्टिक, क्रिकेट, फुटबाल आदि खेलों में दक्ष थे। पण्डित जी गवर्नमेंट कॉलेज में क्रिकेट तथा फुटबाल टीम के सदस्य थे। उन्हें शतरंज का भी कुछ दिन शौक रहा। स्नान करने का बड़ा ध्यान रखते थे। चाहे कोई ऋतु हो, प्रतिदिन दो बार ठण्डे जल से स्नान अवश्य कर लेते थे। बचपन में उनका शरीर बड़ा हष्ट पुष्ट था। पर लगातार प्राकृतिक नियम तोड़े गए। उसका ही दण्ड भुगतना पड़ा। अन्यथा अभी आयु ही क्या थी? केवल 26 वर्ष!

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. आत्माराम अमृतसरी, ब्रह्मयज्ञ, (क) पृष्ठ 147, (ख) पृष्ठ 153
2. सद्धर्म प्रचारक, 30 नवम्बर, 1889, पृष्ठ 2
3. इस प्रसंग में गुरुदत्त का लाजपतराय के नाम लिखा पत्र पढ़ने योग्य है। (पत्रांश के लिए देखिए परिशिष्ट ख)
4. वैसे पण्डित गुरुदत्त डायरी लिखने के पक्षधर थे। वे कहा करते थे कि प्रत्येक नवयुवक को चाहिए कि वह अपनी कमजोरियाँ अपनी डायरी में लिखे और उनसे बचने का प्रयत्न करे। प्रतिदिन अपनी प्रत्येक भूल और कमजोरी दूर करने के विषय में सोचे। अगर युवक इस बात से डरता हो कि डायरी कोई देख लेगा, तो गुप्त भाषा में वह इस तरह लिखे कि स्वयं तो समझ सके पर दूसरा कोई न समझ सके (द्रष्टव्य : जीवन चरित्र पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी (उर्दू), संस्मरण गणपतराय, पृष्ठ 27)।
5. स्वामी श्रद्धानन्द ने बहुत दर्द भरे शब्दों में लिखा है – "हा! गुरुदत्त के मूर्ख मित्रो तथा अन्ध श्रद्धालु भक्तो! यदि तुम जानते कि अपने पूज्य पण्डित जी को दो–दो बजे रात तक पठन–पाठन और शंका–समाधान के लिए जगाकर तुम उन्हें मौत के मुँह में धकेल रहे हो, तो तुम्हें कितना अनुताप होता?" (द्रष्टव्य : कल्याण मार्ग का पथिक, पृष्ठ 166)
6. आर्य मुसाफिर, फरवरी 1905, पृष्ठ 112–13, गुरुदत्त कहा करते थे कि प्रातःकाल भ्रमण के पश्चात् पाँच–सात मिनट लेट जाना चाहिए, इससे पेट साफ होने में सहायता मिलती है। यदि भ्रमण के समय एक संतरा खा लिया जाए तो और भी हितकार है।
7. लाजपतराय, पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी, सम्पादक डॉ. रामप्रकाश, पृष्ठ 92
8. जीवनदास (सम्पादक), द वर्क्स ऑफ पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी एम.ए., पृष्ठ 23
9. स्वामी जी ने 1890 ई. में आर्यसमाज छोड़ दी थी। उससे पूर्व लगभग चार वर्ष उन्होंने कई आर्यसमाजें स्थापित की थीं।

कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

☞ *पृष्ठ 6 का शेष*

विद्या का चिन्ह–उपनयन...

का हनन करने जैसा है।

आज के काल में उपनयन संस्कार केवल कुछ एक गुरुकुलों तक ही सीमित हो करके रह गया है। गुरुकुलों में बालकों को विद्या दी जाती है, अन्य शिक्षण संस्थानों में तो शिक्षा दी जाती है, शिक्षित होकर बालक जीविकोपार्जन भली–भांति करने में सक्षम तो हो जाते हैं परन्तु विद्या से वंचित रह जाते हैं। उपनयन संस्कार हमें विद्या का अधिकारी बनाता है, इस अपने अधिकार को भी बहुत कम लोग समझ पाते हैं। वैसे तो परस्पर लड़ाई ही अधिकारों के कारण ही होती है परन्तु जो अधिकार हमें ऋषियों ने प्राप्त कराए हैं, उन की अवहेलना कर रहे हैं और चाहते हैं सुख–शांति जो कैसे संभव हो सकती है। आज आवश्यकता है अच्छे संस्कारों की। उपनयन संस्कार जो इन संस्कारों में से प्रमुख एवं अति महत्वपूर्ण संस्कार है, विद्याध्ययन के प्रतीक के रूप में तथा वैदिक संस्कृति के चिन्ह रूप में हम सब तीनों आश्रमवासी (ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी) बड़े गर्व के साथ यज्ञोपवीत को धारण करें। हमारे उपदेशक एवं विद्वान भी इस बिंदु पर विशेषतः प्रकाश डालें कि यज्ञोपवीत विद्या का ही चिन्ह है और विद्या से ही प्रतिष्ठा मिलती है। कहा भी गया है कि **विद्या से नर विभूषित होता है, विद्या विहीन नर पशु समान होता है। हम सब अपने बच्चों के उपनयन संस्कार करें और उन्हें शिक्षा के साथ विद्या से भी विभूषित करें।**

786/8 अर्बन एस्टेट, करनाल 132001
मो. 09416801757
ई मेल: raj.kukreja.om@gmailaa.com

☞ *पृष्ठ 8 का शेष*

उपनिषद्–प्रश्नोत्तरी

–भृगुवल्ली (षष्ठ अनुवाक)

आनंद ब्रह्म है। आनंद से सब भूत उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न होने के पश्चात् आनंद से ही जीवित रहते हैं अंत में आनंद में ही विलीन हो जाते है।

छांदोग्योपनिषद्

या वै सा गायत्रीयं वाव सा येयं प्रथिव्यस्याँ्। हीदँ सर्व भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव नातिशीयते।।2।।

तीसरा प्रपाठक (12वां खंड)

गायत्री मानों पृथिवी ही है। जैसे पृथिवी में समूचा जगत् प्रतिष्ठित है, वह सुख की रक्षा करती है। कोई इसे लांघ नहीं सकता, इसी प्रकार गायत्री में उपासक की सब भावनाएं निहित हैं। वह उपासक की रक्षा करती है। इसे कोई लांघ नहीं सकता।

8. सय एषोऽणिमैतदात्म्यमिद ँ सर्वं तत्सत्य ँस आत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो इति। भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति। तथा सोम्यति होवाच।।7।। –षष्ठ प्रपाठक (8वां खण्ड)

वह परमदेवता सत् क्या है? वह स्थूल नहीं असीम है, सूक्ष्मतम है, यह सब स्थूल शरीर सत्य नहीं है, वही सत्य है, वह आत्मा है, हे श्वेतकेतु तत्वमसि तू अर्थात् तेरा आत्मा तत्त्व है। तू उसकी तरह सत् नहीं है। श्वेतकेतु ने कहा भगवन्। इस रहस्य को फिर समझाइये। पिता ने कहा तथास्तु।

बृहदारण्यकोपनिषद्

भूतानि प्रियाणि भवन्ति। न वा अरे सर्वस्व्य कामाय सर्व प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्व प्रियं भवति आत्मा वा अरे व अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यामनो व अरे दर्शनेन श्रवणेन

मत्या विज्ञानेनेद ँ सर्वं विदितम् ।।5।।

दूसरा अध्याय (चौथा ब्राह्मण)

अपनी आत्मा की कामना के लिए भूत प्रिय होते हैं अरे! इस सब–कुछ की कामना के लिए सब प्रिय होता है और वह आत्मा ही तो द्रष्टव्य है, श्रोतव्य है, मन्तव्य है, निदिध्यासितव्य है। उसी को देख, उसी सुन, उसी को जान, उसी का ध्यान कर। अरे मैत्रेयी! आत्मा के ही देखने से, सुनने से समझने से और जानने से सब गाँठे खुल जाती हैं।

10. एषां वै भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्याँ आपोऽपामोधय ओषधीनां पुष्पाणि पुष्पणां फलानि फलानां पुरुषं पुरुषस्य रेतः ।।1।।

छटा अध्याय (चौथा ब्राह्मण)

महाभूतों का रस पृथिवी है, पृथिवी का रस जल है, जलों का रस ओषधि, ओषधियों का रस पुष्प, पुष्पों का रस फल, फलों का रस पुरुष, पुरुष का रस वीर्य है।

1135/11 पंचकूला (हरियाणा)
फोन नं. 0172–2567845

पत्र/कविता

मेरा दोष नहीं

गाय को हम गौमाता कहते हैं। जहाँ पर भी हिन्दू बसता है वह गाय पालता है, माँ मानकर सेवा करता है। वर्तमान समय में गाय का बड़ा अपमान हो रहा है। उनका मांस खाने वालों की संख्या बढ रही रही है। भारत भी इसको रोक नहीं सकता है। पैसा है भगवान, धन के लालच में क्या अनर्थ नहीं करते हैं। जहाँ तक इतिहास की बात है। मुगल शासक भी गाय को मारना नहीं चाहते थे, उनकी रक्षा करते थे। मारने वालों को मौत की सजा देते थे या हाथ काट देते थे। हिन्दू के राज्य में यह अनर्थ बढ़ता ही जा रहा है। रोकने का उपाय ही नहीं है। मोरिशस भी अछूता नहीं है। यहां भी लोग लगभग हर घर में एक या दो गायें होती थीं। दूध मिलता था, घी मिलता था, दही–माख्न की भरमार थी। अभी तो मुहाल हो गया है। घास ही नहीं है। चारागाह भी नहीं है। स्टेट मालिक घास काटने वाली दवा छिड़कर घास नष्ट कर देते है। एक पछतावा यह भी है कि लोग गाय–बछड़ा पालते थे। समय आने पर, आवश्यकता होने पर, कसाई के हाथ बेच देते थे। वे मारकर खा जाते थे। वूढ़ी गायों को छोडने के लिए जंगल नहीं है। मुआवजा कौन देगा तो कसाई ही सामने मिलता है। गाय की हत्या हो ही जाती है। आठ कसाइयों में हिन्दू भी एक कसाई बन जाता है।

कसाई गाय खरीदकर ले जाता है, मारने की तैयारी करता है, काटने से पहले कहता है। **''मेरा दोष नहीं तेरा मेरा का दोष''** यानि मारने वाले का दोष नहीं पालने वाले का दोष है। उसने बेचा है हमने खरीदा है। और मारे जा रहे हैं। गो रक्षा का उपाय क्या अपनाएँ सोचना पड़ेगा।

सोनालाल नेमधारी 'आर्य भूषण'
कारोलिन, बेल एयर मोरिशस

****

श्रद्धा और समर्पण के प्रतीक- पं.गुरुदत्त विद्यार्थी

संदर्भ इतिहास का –
सन् 1883 – महर्षि का महाप्रयाण,
अथवा कहो कि महानिर्वाण,
राष्ट्र की बलिवेदि पर दिया गया
अपूर्व बलिदान।
तब भयभीत था जनमानस –
कहीं रुक न जाये वेद–प्रचार अभियान,
पड़ न जाये मद्धिम ज्वलन्त वैदिक मशाल
सत्य को फिर से न कर ले आच्छादित
पाखण्ड, अंध विश्वास का क्रूर मकड़जाल।
तभी चमकी आशा की कुछ दिव्य किरणें
श्रद्धानन्द, लेखराम, लाजपत,
महात्मा हँसराज, पं. गुरुदत्त
चलती फिरती जीवंत विद्वत्त
अथक लेखनी, अद्भुत वाग्मिता।
अपने ऋषि को 'जीने' की उत्कट अभिलाषा,
ऋषि मिशन के प्रति पूर्ण समर्पण, अगाध श्रद्धा,
वैदिक पथ का पथिक गुरुदत्त,
अबाध गति से चला निरंतर
तन, मन, धन सब कर गया निछावर,
अपने प्रिय, डी.ए.वी. एवं पावन वेद–पथ पर।
लेखनी और वक्तव्य से कर गया निरुत्तर वेद विरोधियों को –
टी. विलियम्स, मोनियर विलियम्स,
क्या पिन्कॉट, क्या मैक्समूलर।
उन्हें लगा कि जैसे गुरुदत्त नहीं,
समक्ष खड़े थे स्वयं ऋषिवर।
गुरुदत्त ने तेल की जगह अपना रक्त जलाकर
जलती रखी वैदिक मशाल,
उनका त्याग, श्रद्धा, समर्पण सब बेमिसाल,
वे थे धर्मयुद्ध के अदम्य अनीक
तर्क, युक्ति, विज्ञान के व्याख्याता सटीक,
ईश्वर, वेद और ऋषि के प्रति
श्रद्धा, समर्पण के अनुपम प्रतीक।"

प्रो. ओम् कुमार आर्य
107/7, जवाहर नगर चौक जीन्द (हरियाणा)
09416294347

वेद सबसे पुराना ग्रंथ

वेद का ज्ञान किसी एक समुदाय के लिये नहीं है यह सब मनुष्यों के लिये है। गायत्री मन्त्र में ईश्वर से यह प्रार्थना की गई है कि वह हमारी बुद्धियों को ठीक मार्ग पर चलाये। वेद उपदेश से ही संसार में सुख और शांति हो सकती है। मनुष्यों में कोई स्वभाविक ज्ञान नहीं होता। बच्चा चाहे कितना बड़ा हो जाये बिना सिखाये अथवा पढ़ाये लिखाये उसे कुछ नहीं आयेगा इसलिये किसी सिखाने वाले की आवश्यकता होती है जो माता पिता और अध्यापक अथवा गुरू द्वारा पूरी की जाती है इसलिये सृष्टी के आरम्भ में ईश्वर ने चार सदियों द्वारा वेद का ज्ञान दिया इसलिये उसे गुरूओं का भी गुरू कहा गया है। **'सः गुरूणाम अपि गुरु'** वेद में सब मनुष्यों के सुखी रहने की प्रार्थना के मन्त्र हैं किसी एक व्यक्ति के लिये नहीं हैं। हम सब का भला चाहते हैं। इसलिये आर्य समाज को वेद का प्रचार करते रहना चाहिये डी.ए.वी. द्वारा अपनी संस्थाओं में विद्यार्थियों को धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा भी दी जाती है जो बड़ी अच्छी बात है। हम सब को अपना धर्म वैदिक ही लिखना चाहिये तभी सब विद्यार्थी पढ़ने के बाद आर्य बने रहेंगे क्योंकि हिन्दु तो कोई धर्म नहीं है। हिन्दुस्तान में रहने के कारण ही हम हिन्दु भी कहाते हैं। कोई माने चाहे न माने हम सब के पूर्वज पहले आर्य ही कहाते थे। सब मतमतान्तर तो कुछ समय से ही चले हैं। निम्नलिखित चार लाईन सब को याद रखनी चाहिये।

आर्य हमारा नाम है वेद हमारा धर्म
ओम् हमारा ईश्वर है यज्ञ योग हमारा कर्म
भारत हमरा देश है सदा रहे स्वतंत्र सत्य
हमारा लक्ष्य है गायत्री महा मंत्र।

अश्विनी कुमार पाठक
सी 233 नानकपुरा नई दिल्ली

****

☞ पृष्ठ 7 का शेष

यज्ञ में वेद मंत्रों से ही...

गमन कर दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करती है या इच्छित कार्य करने में सहायक होती है। जिस उद्देश्य से मंत्र जपा जा रहा है उसमें सफलता दिलाने में यह सहायक सिद्ध होती है। दैनिक जागरण 3 नवम्बर 2009 इस अल्फा तरंग को ज्ञान धारा भी कह सकते हैं।

दिल्ली के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ. डब्लू. सेल्वामूर्ति ने अपने शोधपत्र ''फिजियोलॉजिकल इफेक्ट्स ऑफ मंत्राज ऑन माइण्ड एण्ड बॉडी'' में लिखा है कि अग्निहोत्र (यज्ञ) के मंत्रों का मनुष्य की फिजियोलॉजी तथा नर्वस सिस्टम तंत्रिका तंत्र पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इसे उन्होंने न्यूरोफिजियोलॉजिकल प्रभाव की संज्ञा दी है। उन्होंने कहा कि अग्निहोत्र करने से शरीर का तापमान सामान्य से एक डिग्री सेंटीग्रेट कम हो जाता है, इससे मानसिक शांति मिलती है, तनाव दूर होता है, और मस्तिष्कि विश्रान्ति की अवस्था में पहुंच जाता है, जिसे विज्ञानवेत्ता ''अल्फा स्टेट'' के नाम से संबोधित करते हैं। यज्ञ से अल्फा तरंगों में बीस प्रतिशत तक की वृद्धि देखी गयी है। इस प्रयोग–परीक्षण के लिए आठ स्वस्थ व्यक्तियों का चयन किया गया और उन पर दो दिन अग्निहोत्र का प्रयोग किया गया। प्रथम दिन बिना मंत्र के तथा दूसरे दिन सस्वर मंत्रोच्चार के साथ यज्ञ संपन्न किया गया। इस बीच आठों व्यक्तियों के विभिन्न कार्यकीय परिवर्तनों जैसे–हृदयगति, ई.ई.जी., रक्तचाप, जी.एस.आर. आदि का संबंधित अत्याधुनिक मशीनों उपकरणों से जांच पड़ताल व प्रमापन किया गया। इन परीक्षणें में पाया गया कि यज्ञीय वातावरण सूक्ष्मीकृत एवं वायुभूत वनौषधियों एवं मंत्रोच्चार के प्रभाव से हृदयगति शांत हो गई। शरीर का तापमान एक डिग्री सेंटीग्रेट कम हो गया है। जी.एस.आर. भी उस समय बढ़ा हुआ पाया गया। ई.सी.जी. में भी परिवर्तन मापा गया। ''डेल्टा'' मस्तिष्कीय तरंगों में कमी तथा ''अल्फा स्टेट'' के कारण विशेष रूप से पाए गए।

यज्ञ की प्रभावी क्षमता का प्रमुख कारण यह है कि यज्ञाग्नि में मंत्रोच्चारण के साथ जो हव्य पदार्थ, वनौषधियां आदि आहुति के रूप में डाली जाती हैं वे सूक्ष्मीकृत होकर लयबद्ध मंत्रोच्चार से उत्पन्न उच्च आवृत्ति की ध्वनि तरंगों के साथ मिल जाती हैं। इस प्रकार उत्पन्न उच्चस्तरीय संयुक्त ऊर्जा तरंगों का स्थायी व दीर्घकालिक प्रभाव बना रहता है। अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ. हार्वर्ड सितगुल ने अपने अनुसंधान निष्कर्ष में बताया है कि अकेले ''गायत्री महामंत्र'' में ही इतनी प्रचण्ड सामर्थ्य है कि उसके सस्वर उच्चारण से मानसिक विक्षोभों–दुर्भावनाओं का शमन किया जा सकता है। उन्होंने गायत्री महामंत्र के सस्वर उच्चारण के एक सेंकड में एक लाख तरेंगें उत्पन्न होने का मापन करके यह रहस्योद्घाटन किया है। नवभारत टाइम्स समाचार पत्र सितम्बर 2007 के अंक में तीन लेख छपे थे:–1. चीन का एक किसान अपनी पैदावार बढ़ाने के लिए पौधों को क्लासिकल म्यूजिक सुनाता था जिससे उसकी पैदावार 7 प्रतिशत बढ़ गई। 2. स्प्रिचुअलिटी से होती है स्ट्रेस बस्टिंग (तनाव मुक्ति)। इससे आपका जिंदगी को देखने का तरीका बदल जाता है। तनाव दूर हो जाता है। 3. कनाडा के शोधकर्ताओं के अनुसार म्यूजिकल से याददाश्त, सीखने की क्षमता तथा आई क्यू बढ़ जाते हैं। उपर्युक्त तीनों समाचारों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संगीत का हमारे शरीर तथा मन पर कितना प्रभाव पड़ता है। यज्ञ करते समय वैदिक मंत्रों का सस्वर पाठ हमारे मन मस्तिष्क को विशेष शांति प्रदान करता है।

हवन कुण्ड के चारों ओर बैठे याज्ञिक गण जब वेद पाठ करते हैं तो उससे स्वत: ही एक प्रकार का प्राणायाम होने लगता है। परिणाम स्वरूप असीम सौरभ युक्त प्राणपद वायु वेद–पाठियों के फेफड़ों में भर जाती है और उन्हें निरोगी बना देती है। यज्ञ के भौतिक लाभ के साथ–साथ आध्यात्मिक लाभ भी होते हैं। यज्ञ में जो आहुति डाली जाती है उसके दो भाग हो जाते हैं। एक स्थूल भाग जो सूर्य आदि को प्राप्त हो जाता है, दूसरा भाग संस्कार रूप में हमारे चित्त पर पड़े हुए, सोए हुए सुसंस्कारों को छिन्न–भिन्न करता है यज्ञ का यह सूक्ष्म भाग हमारे सूक्ष्म शरीर को पवित्र करता है। हवन की वैज्ञानिकता यह है कि इसका स्थूल भाग भौतिक शुद्धि करता है तथा सूक्ष्म भाग आध्यात्मिक शुद्धि। आत्मिक शुद्धि, श्रद्धा–भक्ति और तन्मयता से दी हुई आहुतियां सबके हृदय मंदिर में चुपचाप प्रवेश करती जाती हैं और हृदय के कलुषित विचारों की सफाई करती जाती हैं और उसके स्थान पर पुनीत भावनाओं का अभ्युदय व नि:श्रेयस की सिद्धि होती है। यज्ञ करते समय मंत्रों का जाप हमें अनेक शारीरिक व मानसिक लाभ पहुंचाता है। इन मंत्रों में सबसे प्रमुख शब्द 'ओ३म्' है जो कि ईश्वर का निज नाम है। उसके बारम्बार उच्चारण करने से अनेक मानसिक व्याधियां शांत हो जाती हैं। तदन्तर गायत्री मंत्र मुख्य मंत्र माना जाता है। स्वामी संकल्पानन्द जी ने अपनी पुस्तक 'गायत्री महिमा' में लिखा है– इसके जाप से हमारे शरीर में विद्यमान दस प्राणों की रक्षा होती है। इसमें स्तुति, प्रार्थना, तथा उपासना तीनों सम्मिलित हैं। इसके उच्चारण से कु–विचारों से बचा जा सकता है। इससे बुद्धि तत्व तीव्र व तीक्ष्ण होने लगता है। इस प्रकार अग्निहोत्र में प्रयुक्त अन्य सैकड़ों मंत्र भी इसी प्रकार लाभकारी हैं।

''मंत्र'' शोधक संयंत्र की तरह काम करता है जैसे झाड़ू, कमरे में स्थित कचरे को साफ करता है वैसे ही मंत्र हमारे अंत: करण में स्थित बाधक तत्वों को दूर करने में मदद करता है। मंत्र की पुनरावृत्ति से अंत:करण या चेतना में हलचल उत्पन्न होती है। यह हलचल कुसंस्कारों और सुसंस्कारों में परस्पर टकराव उत्पन्न करती है और जैसे–जैसे जाप क्रिया बढ़ती जाती है वैसे–वैसे व्यक्ति में कुसंस्कारों एवं असद्वृत्तियों का पराभव होने लगता है अर्थात् चित्त में पड़े कुत्सित संस्कार भविष्य में उसे क्रियाशील करने में अक्षम होते जाते हैं। क्रियान्वयन के समय हमेशा सद्विचारों की विजय होती है। यही कारण है कि हमारे वैदिक धर्म में गर्भाधान से लेकर अन्तेष्टि पर्यन्त 16 संस्कारों का महत्व है जिनके करने से हमारे पुराने कुसंस्कार हमें वैसे कार्य करने में प्रेरित नहीं कर पाते क्योंकि नए श्रेष्ठ संस्कार हमारे अंदर, हमारे सूक्ष्म शरीर में समाहित होते रहते हैं। ये हैं मंत्र जाप के लाभ। जब हम यज्ञ करते हैं तो मंत्रोच्चारण करते हैं अत: समस्त लाभ यज्ञ में बोले जाने वाले वेद के पवित्र मंत्रों द्वारा ही होते हैं अन्य अवैदिक वाक्यों से नहीं क्योंकि अन्य के पाठ में यह प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। ईश्वर के वचन से जो सत्य प्रयोजन सिद्ध होता है, सो अन्यों से कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जैसा ईश्वर का वचन सर्वथा भ्रांति रहित सत्य होता है वैसा अन्य का नहीं। सो यज्ञ में वेदमंत्रों के उच्चारण से जहां शारीरिक लाभ मिलते हैं वहीं अनगिनत मानसिक लाभ भी हमें अनायास ही प्राप्त होते रहते हैं–

1. वेद पाठ को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मान्यता–संयुक्त राष्ट्र संघ के शिक्षा एवं सांस्कृतिक संगठन (UNESCO) द्वारा वेद पाठ को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्रदान करते हुए इसे मानव सभ्यता की अलौकिक विरासत घोषित किया गया।
2. वेद पाठ हृदय के लिए शक्तिदायक–युनेस्को द्वारा 7 नवंबर 2003 को पेरिस में गीत–संगीत की एक अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता आयोजित की गई। उसमें वेद पाठ की उपयोगिता को हृदय की शांति–सांत्वना के लिए सर्वोच्च प्रथम स्थान पर ठहराया गया है।
3. मंत्रों की ध्वनि–तरंगें रोग उपचार में सहायक–मंत्रों की ध्वनि तरंगें (Sound Waves) शरीर व मन पर शक्तिशाली प्रभाव डालती हैं। ये तरंगे रोगों के उपचार में उसी प्रकार सहायता करती हैं, जिस प्रकार फिजियोथेरेपी (Physiotherapy) में आल्ट्रासॉनिक या सुपरसॉनिक (Untrasonic or Supersonic) तरंगों द्वारा शरीर दर्द वाले स्थानों का दर्द दूर किया जाता है।
4. भारत के राष्ट्रपति के द्वारा वेद मंत्रों के व्यापक प्रभाव की चर्चा–वेदमंत्रों के उच्चारण से उत्पन्न स्वर लहरियों द्वारा शरीर के विभिन्न अवयवों पर पड़ने वाले व्यापक लाभकारी प्रभाव के विषय में, भारत के राष्ट्रपति महामहिम श्री ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने हरिद्वार में उत्तरांचल संस्कृत एकादमी द्वारा आयोजित समरोह में कहा–वेद मंत्रों का मानव मस्तिष्क पर व्यापक प्रभाव पड़ता है और इससे मस्तिष्क तरोताजा रहता है। राष्ट्रपति महोदय ने वहां वेद मंत्रों की सी.डी. भी मंच से चलवाकर सारे जनसमूह को वेदमंत्रों को सुनने की प्रेरणा दी तथा स्वयं भी खड़े होकर वैदिक मंत्र–पाठ सुनते रहे। (आर्य जगत 14–11–2004)
5. डिवाइन लाइफ सोसायटी, ऋषिकेश के प्रसिद्ध योगी रिसर्च स्कॉलर स्वामी शिवानंद जी के अनुसार–

   Chanting of Mantra destroys the microbes and vivifies the cells and tissues. They are best, most potent anticeptics and germicides. They are more potent than ultrs-violet rays or Rontgen rays"

अर्थात् वेद मंत्रों का गायन रोगाणुओं को नष्ट कर देता है और कोशिकाओं व ऊतकों को अनुप्राणित करता है, उनमें नव–जीवन का संचार करता है। वेद मंत्र सर्वोत्तम, सर्वाधिक शक्तिशाली रोगाणुरोधक और रोगाणुनाशक हैं (रोगों के कीटाणुओं को रोकने और उन्हें मिटाने वाले हैं)। वेद मंत्रों का गायन पराबैंगनी व आल्ट्रावायलेट किरणों से भी अधिक ताकत रखता है।

अत: पाठकों से मेरा निवेदन है कि कभी भी अपने घरों में यज्ञ करें अथवा करोयें तो ईश्वरीय वाणी सत्यसनातन वेद के पवित्र मंत्रों से ही करें व कराएं तथा अवैदिक वाक्यों को वेद मंत्रों की संज्ञा देकर यज्ञ अनुष्ठान कराने वाले धन लोलुप पेटार्थी ब्राह्मणों से बचें।

डी.एन.वाई व मास्टर कॉस्मिक एजर्नी हीलर,
चरित्र निर्माण मंडल,
सैनी मोहल्ला, ग्राम–शाहबाद,
मोहम्मदपुर नई दिल्ली–61

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 07-08/5/2014
रजिस्ट्रेशन नं. आर0 एन0 आई0 39/57

राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत गीतों पर मस्त होकर झूमे लोग

राष्ट्र की समृद्धि चरित्रवान सभ्य नागरिकों से होती न कि धन दौलत या ऊंची इमारतों से। यह बात वैदिक विद्वान आचार्य अग्निमित्र शास्त्री ने आर्यसमाज विज्ञाननगर में ग्यारह कुण्डीय राष्ट्र समृद्धि महायज्ञ के अवसर पर आयोजित आर्य समाज के वार्षिकोत्सव समारोह में कही। उन्होंने कहा कि हमारे पूर्वजों का चरित्र अत्यंत ऊंचा था इसलिए हमारा देश उस समय दुनियां का सिरमौर था। संस्कार युक्त नागरिक ही श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण हैं।

इस अवसर पर पं. बिरधीचंद आर्य ने कहा कि माता पिता का कर्त्तव्य है कि वह संस्कारवान संतान का निर्माण करें। समाज तथा परिवार में स्त्रियों का सम्मान होना चाहिए।

आर्य विद्वान डी.ए.वी. के धर्मशिक्षक पं. शोभाराम आर्य ने कहा कि मनुष्य को श्रेष्ठ कर्म करने चाहिए। अच्छे धर्म का फल सदा ही अच्छा होता है। कर्मफल से बचना नामुमकिन है।

इस अवसर पर अर्जुनदेव चड्ढा प्रधान जिला आर्य समाज सभा कोटा ने कहा कि बच्चों एवं परिववारों में संस्कार को बढ़ावा देने के लिए ही जिला सभा द्वारा घरों में जाकर यज्ञ करने का कार्यक्रम चलाया जा रहा है।

समारोह में सबसे पूर्व भक्ति संगीत का आयोजन किया गया जिसमें तुलसीदान राव तथा रितुजोशी ने संगीत की धुन पर ईश्वर भक्ति के सुमधुर भजनों से उपस्थित श्रद्धालुओं को भक्तिरस में सराबोर किया।

वार्षिकोत्सव के इस अवसर पर आर्यसमाज विज्ञाननगर के इस मंच पर कोटा की आर्यसमाजों के प्रधान एवं मंत्री भारी संख्या में उपस्थित थे।

कार्यक्रम का संचालन कोटा के सुप्रसिद्ध उद्घोषक प्रद्युम्न शर्मा तथा आर्यसमाज के मंत्री राकेश चड्ढा ने किया। आर्यसमाज विज्ञाननगर के प्रधान जे.एस.दुबे ने उपस्थित विद्वानों तथा स्त्री पुरूषों का आभार व्यक्त किया

डी.ए.वी. पूंडरी में महात्मा हंसराज जन्मोत्सव मनाया गया

आर्य युवा समाज इकाई की ओर से डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल पूंडरी की भव्य यज्ञशाला के प्रांगण में त्यागमूर्ति व डी.ए.वी. संस्था के संस्थापक महात्मा हंसराज के जन्मदिवस के शुभावसर पर संसार का श्रेष्ठतम कार्य हवन आचार्य रविंद्र कुमार शास्त्री के ब्रह्मत्व में किया गया तथा विशेष यजमान प्राचार्या श्रीमती साधना बख्शी जी ने आसन ग्रहण कर सुशोभित किया। यज्ञ के पश्चात् संगीत विभाग की ओर से भजन तथा संगीत अध्यापक संदीप व स्वदेश कुमार द्वारा भतन की प्रस्तुति को सुनकर सभी श्रोतागण प्रफुल्लित हो गए। संस्कृत अध्यापक श्री सत्यावान द्वारा महात्मा हंसराज जी के जीवन पर विस्तृत प्रकाश डाला गया। कार्यक्रम के संयोजक रविंद्र कुमार शास्त्री द्वारा विचार व्यक्त करने के पश्चात् वैदिक प्रश्नोतरी के माध्यम से उपस्थित सभी छात्रों से आर्य समाज, स्वामी दयानंद सरस्वती तथा महात्मा हंसराज से संबंधित प्रश्न पूछे गए तथा बच्चों ने बड़े हर्षोल्लास के साथ प्रश्नों का उतर दिया तथा विजेता दात्रों को प्राचार्या श्रीमती साधना बख्शी द्वारा पारितोषिक भी दिये गये।

प्राचार्या श्रीमती साधना बख्शी जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में सभी का स्वागत करते हुए महात्मा हंसराज के जन्मदिवस की हार्दिक शुभकामनाएं दी तथा त्यागमूर्ति महात्मा हंसराज के बताए गए आदर्शों पर चलने की प्रेरणा दी। प्राचार्या महोदया द्वारा कार्यक्रम की सफलता पर महाराणा प्रताप सदन, अध्यापकों तथा उपस्थित सभी छात्रों का धन्यवाद किया गया। अंत में शांति पाठ व वैदिक जयघोष के पश्चात कार्यक्रम का समापन किया गया।

डी.ए.वी. यासीन रोड अमृतसर में हवन द्वारा नए सत्र का शुभारम्भ

बी.के.डी.ए.वी.पब्लिक स्कूल यासीन रोड में डॉ. नीलम कामरा आर. डी. अमृतसर जोन और प्रधाना आर्य प्रादेशिक उपसभा पंजाब एवं आदरणीय डॉ. के. एन. कौल जी मैनेजर तथा आर्य समाज लोहगढ़ के प्रधान के आशीवाद द्वारा टीचर इंचार्ज मिस नीना बत्तरा की अध्यक्षता में हवन का आयोजन किया गया। यह हवन स्कूल के नए सत्र के प्रारम्भ के उपलक्ष्य में करवाया गया। इस के मुख्य यजमान श्री सुरिन्द्र कुमार मेहरा, श्रीमान् एवं श्रीमती कमल मेहरा जी, श्री नैनीश बहल तथा डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल की प्रधानाचार्या मैडम नीरा शर्मा जी ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। मैनेजर डॉ. के एन. कौल तथा आर.डी. डॉ. नीलम कामरा जी ने

नए सत्र के उपलक्ष्य में छात्रों को अपना आशीर्वाद प्रदान किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने स्कूल में वार्षिक परीक्षा वितरित करके विभूषित किया। मैडम नीरा शर्मा जी ने छात्रों को हवन एवं शिक्षा का महत्व बताते हुए, उन्नति के मार्ग पर चलने के लिए प्रोत्साहित किया। इसके अतिरिक्त मैनेजर डॉ. के.एन. कौल जी ने भी विद्यार्थियों को मेहनत व लगन के साथ पढ़ाई करने के लिए प्रेरित किया। मोहल्ला प्रधान श्री सुरिन्द्र कुमार खोसला जी ने तथा अभिभावकों ने इस आयोजन में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। नए सत्र में हवन के उपलक्ष्य में स्कूल के टीचर इँचार्ज मिस नीना बत्तरा जी ने विद्यार्थियों को उनके उज्जवल भविष्य की शुभकामनाएं आशीर्वाद सहित प्रदान कीं।

मुद्रक व प्रकाशक – **श्री प्रबोध महाजन,** सभा मंत्री द्वारा **मदन गोयल** के प्रबंध में **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि.,** डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – **श्री पूनम सूरी**